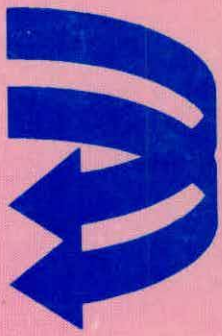

मानसून पवन

भारतीय जलवायु का आधार

राधाकांत भारती

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

मानसून पवन
भारतीय जलवायु का आधार

लेखक
राधाकांत भारती
पूर्व संपादक, 'भगीरथ'

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार
2004

1—10 M of HRD/ND/04

© भारत सरकार, 2004
© Government of India, 2004

प्रकाशक :

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
मानव संसाधन विकास मंत्रालय,
(माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा विभाग)
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली–110 066

मूल्य :

देश में	:	रु. 112.36;
विदेश में	:	£ पौंड/ 4.14,
		$ डॉलर 5.97

बिक्री हेतु संपर्क सूत्र :

(1) **वैज्ञानिक अधिकारी (बिक्री)**
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिमी खंड 7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110 066

(2) **प्रकाशन नियंत्रक**
प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
सिविल लाइन्स
दिल्ली-110 054

समर्पण

उस
महाकवि कालिदास की
स्मृति को
जिसने मेघदूत
मानसून की
पहचान की
''आषाढ़स्य प्रथमदिवसे.....''

(मेघदूतम्)

—राधाकांत भारती

आयोग के पूर्व अध्यक्ष

1.	डॉ. दौलत सिंह कोठारी	1961-1965
2.	डॉ. निहाल करण सेठी	1965-1966
3.	डॉ. विश्वनाथ प्रसाद	1966-1967
4.	डॉ. एस. बाल सुब्रह्मण्यम्	1967-1968
5.	डॉ. बाबूराम सक्सेना	1968-1970
6.	श्री कृष्ण दयाल भार्गव	1970-1970
7.	श्री गंटि जोगि सोमयाजी	1970-1971
8.	डॉ. पी. गोपाल शर्मा	1971-1975
9.	प्रो. हरबंश लाल शर्मा	1975-1980
10.	प्रो. मलिक मोहम्मद	1983-1987
11.	प्रो. सूरजभान सिंह	1988-1994
12.	प्रो. प्रेमस्वरूप सकलानी	1994-1998
13.	डॉ. हरीश कुमार	1998-1998
14.	डॉ. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव	1998-2001
15.	डॉ. हरीश कुमार	2001-2003

वर्तमान अध्यक्ष

डॉ. पुष्पलता तनेजा	2003-

पुनरीक्षण एवं संपादन

प्रधान संपादक
डॉ. पुष्पलता तनेजा
अध्यक्ष

संपादक
दुर्गा प्रसाद मिश्र
संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु

पुनरीक्षक
श्याम सुंदर शर्मा

भाषा संपादक
देवेंद्र दत्त नौटियाल

प्रकाशन
राम बहादुर
उपनिदेशक

डा. पी. एन. शुक्ल
वैज्ञानिक अधिकारी

कलाकार
श्री आलोक वाही

आमुख

भारत सरकार ने विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा-माध्यम के रूप में हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के विकास के लिए तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय (अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय) के अधीन सन् 1961 में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना की। उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने अनेक पारिभाषिक-कोशों, चयनिकाओं, पाठमालाओं तथा विश्वविद्यालय स्तरीय हिंदी-पुस्तकों का निर्माण किया है। अनेक पाठ्य-पुस्तकें, शब्द-संग्रह, परिभाषा-कोश, चयनिकाएँ, पत्रिकाएँ, पाठमालाएँ आदि प्रकाशित हो चुकी हैं।

पाठमालाओं के निर्माण में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि उनकी विषय-सामग्री उपयोगी तथा अद्यतन हो और भाषा, बोधगम्य एवं आकर्षक हो ताकि अध्यापक भी हिंदी-माध्यम से अपने-अपने विषय को पढ़ाने में सक्षम हो सकें।

प्रस्तुत पाठमाला सामाजिक एवं वैज्ञानिक विषयों के अनुभवी लेखक और भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'भगीरथ' पत्रिका के पूर्व संपादक श्री राधाकांत भारती द्वारा लिखी गई है जो कुल 13 अध्यायों में विन्यस्त है। चौदहवाँ अध्याय परिशिष्ट के रूप में प्रस्तुत किया गया है। श्री भारती ने विषय का प्रस्तुतीकरण बड़े वैज्ञानिक ढंग से किया है। इसका पुनरीक्षण 'विज्ञान प्रगति' के पूर्व संपादक श्री श्याम सुंदर शर्मा ने किया है। यह कार्य लेखक और पुनरीक्षक के अथक परिश्रम से संपन्न हुआ है जो बधाई के पात्र हैं।

पाठमाला की भाषा सरल, बोधगम्य और प्रवाहपूर्ण है। लेखक ने इसमें हिंदी की मानक शब्दावली का प्रयोग करने का भरसक प्रयास किया है और पुस्तक के अंत में संदर्भ तथा शब्दावली सूचियाँ भी दी गई हैं।

मुझे विश्वास है कि यह पाठमाला स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

अप्रैल, 2004

डॉ. पुष्पलता तनेजा
अध्यक्ष

प्राक्कथन

भारत में मानसून प्रत्येक साल आता है, फिर भी यह एक अनूठा मेहमान है, क्योंकि इसके व्यवहार के बारे में निश्चित तौर पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसका आगमन, इसकी वापसी, वर्षा की मात्रा तथा वितरण इन सबका भारतीय जनजीवन से गहरा संबंध है। सिंचाई व्यवस्था के बावजूद भारत की संपूर्ण कृषि अब भी मानसून की जलवर्षा की क्षमता पर निर्भर है। कृषि का प्रभाव उद्योग, राजनीति, समाज और आर्थिक स्थिति पर होता है। इस प्रकार भारत की विभिन्न गतिविधियों का सबसे बड़ा प्राकृतिक नियंत्रक मानसून है।

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि सूर्य सभी वायुमंडलीय गतियों का स्रोत है। सूर्य किरणों के रूप में सौर-ऊर्जा वायुमंडल से होती हुई पृथ्वी की सतह पर पहुँचती है जिसके द्वारा पूरे वर्ष वायुमंडल में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं। जलवायु विज्ञान के अंतर्गत पर्यावरण में होने वाले परिवर्तनों के भौतिक कारणों का विश्लेषण और अध्ययन जलवायु विज्ञान में किया जाता है। इसके अंतर्गत मानसून प्रकार की जलवायु के रूप में एक विशेष शाखा पर पिछले कई वर्षों से वैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन किया जाता रहा है।

भारत ही नहीं, संपूर्ण विश्व में मौसम के बदलते रूप को देखकर वैज्ञानिक सशंकित होते रहे हैं और इसके कारणों को ढूँढने के लिए अध्ययनरत हैं। भारतीय वैज्ञानिकों ने अमेरिकी वैज्ञानिकों के साथ मिलकर जलवायु की पहचान तथा बदलते रूप को समझने के लिए प्रयास किया है। दीर्घकालीन अध्ययन के बाद उनका ऐसा अनुमान है कि एशियाई मौसम, विशेषकर मानसून में आने वाले उतार-चढ़ाव का कारण केवल हिंद महासागर ही नहीं, बल्कि उत्तर अटलांटिक महासागर के घटनाक्रम हैं। परीक्षण तथा कई अध्ययन रिपोर्टों को देखने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि एशियाई मानसून का संबंध उत्तर अटलांटिक महासागर में होने वाले जलवायु तथा जलधाराओं में परिवर्तनों से है।

बदलते मौसम तथा जलवायु में उतार-चढ़ाव के कारणों के वैज्ञानिक अध्ययन तथा विश्लेषण के लिए कुछ वर्ष पहले पेरिस में साठ देशों के वैज्ञानिक

एकत्र हुए थे। जलवायु परिवर्तन यानी 'क्लाइमेट वैरिएशन' की इस संगोष्ठी को 'क्लाइवर' शोध कार्यक्रम का संबोधन दिया गया। 'यूनस्को' मुख्यालय में हुई वैज्ञानिकों की इस महत्वपूर्ण बैठक में यह स्वीकार किया गया कि संसार में मौसम की दशाओं का भी एक निश्चित 'पैटर्न' होता है, जिसकी जानकारी मौसम-परिवर्तन के जनक महासागरों की गहराई में होने वाली हलचलों के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। इसी आधार पर अब मौसम वैज्ञानिकों ने मानसून, एल नीनो और समुद्री प्रोत्थानों पर नजरें टिका रखी हैं जिससे कि मानसून तथा मौसम पूर्वानुमान के कार्य को एक नई दिशा मिलेगी।

प्रस्तुत पुस्तक में भारतीय संदर्भ में मानसून प्रकार की जलवायु तथा इसके महत्वपूर्ण लक्षणों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही भारतीय कृषि, अर्थव्यवस्था तथा जन जीवन पर होने वाले प्रभावों की चर्चा भी की गई है। कृषि प्रधान देश भारत के किसानों का लगाव परंपरा से जलवायु तथा मौसम से रहा है। मौसम संबंधी प्रचलित कहावतों को देकर इसकी रोचक झांकी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। लेखक का यह प्रयास रहा है कि मानसून जलवायु संबंधी वैज्ञानिक जानकारी को भी रोचक ढंग से सरल भाषा में प्रस्तुत की जाए। यह प्रयास कितनी दूर तक सफल रहा है, इसे सुधी पाठकगण ही बता सकने में समर्थ होंगे।

पिछले कई वर्षों से मानसून से संबंधित विषयों पर लेखक ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। कई मित्रों का आग्रह रहा कि मानसून पर एक ज्ञानवर्धक पुस्तक तैयार करना अधिक उचित रहेगा। इस संदर्भ में वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के पूर्व अध्यक्षगण डॉ. राय अवधेश कुमार श्रीवास्तव और डॉ. हरीश कुमार का विशेष अनुरोध प्रेरणादायक रहा है। पुस्तक को रूपांकित करने में संपादक मित्र श्री श्याम सुंदर शर्मा, (विज्ञान प्रगति) श्री राधाकांत अंथवाल (आविष्कार) शेफालिका पंडित और शशि त्रिपाठी का सहयोग सराहनीय रहा है।

पांडुलिपि तैयार करने में अनेक पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, रिपोर्टों और अभिलेखों से सहायता ली गई है, इनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मैं उन सभी परिचित, ज्ञात तथा अज्ञात लेखकों, अध्यापकों तथा विचारकों का भी आभारी हूँ जिनकी सामग्री परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप में पुस्तक की रचना में सहायक हो सकी है।

पुस्तक प्रकाशन और संपादन कार्य को तत्परता से पूरा कराने के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की अध्यक्ष डॉ. पुष्पलता तनेजा तथा संपादक श्री दुर्गा प्रसाद मिश्र की भूमिका सराहनीय रही है। अंत में पुस्तक के पाठकों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि अपनी प्रतिक्रिया से मुझे अवगत कराने की कृपा करेंगे।

14 जनवरी, 2004

राधाकांत भारती

विषय-सूची

पृष्ठ

आमुख

प्राक्कथन

1. भारतीय जलवायु का परिचय 1
2. मानसून : आए कहां से — जाए कहां रे... 4
3. बादल — तेरे रूप अनेक 10
4. मानसून की देन — बाढ़ और सूखा 14
5. मतवाली चाल 19
6. पूर्वानुमान और मानसून की विशेषताएं 22
7. अनुसंधान की दिशा : दीर्घकालीन अनुमान 29
8. कृत्रिम वर्षा के उपाय तथा संभावनाएं 37
9. सागर का जलवायु पर प्रभाव 42
10. बदलता मौसम — रंग-बिरंगा 44
11. भारत में जल स्थिति — वर्षाजल का उपयोग 48
12. मौसम वैज्ञानिक यंत्र और उनका उपयोग 55
13. मानसून और लोकवाणी 60
14. परिशिष्ट

एक : मोनेक्स कार्यक्रम 66

दो : (1) अंग्रेजी-हिंदी पारिभाषिक शब्दावली 69

(2) हिंदी-अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली 72

तीन : संदर्भ-ग्रंथ तथा पत्रिकाएं 76

चार : वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली निर्माण के सिद्धांत 77

पांच : आयोग के प्रकाशनों की सूचियाँ

(1) शब्दसंग्रहों की सूची 80

(2) परिभाषा कोशों की सूची 83

(3) पाठमालाओं की सूची 86

1. भारतीय जलवायु का परिचय

पृथ्वी पर जनजीवन को नियंत्रित करने वाले तत्वों में जलवायु एक आवश्यक और महत्वपूर्ण तत्व है, विशेषकर भारतीय उपमहाद्वीप में मानसून प्रकार की जलवायु कई तरह की विशेषताएं रखती है। इस दिशा में वैज्ञानिकों ने निरंतर अनुसंधान करके इसके कतिपय रहस्यों का पता पा लिया है। किंतु फिर भी मौसम के पूर्वानुमान में पूर्ण सफलता नहीं मिल पाती है। मानूसन के आगमन, उसका प्रवाह पथ तथा लौटने की उचित जानकारी देने के लिए कई प्रकार के वैज्ञानिक यंत्रों की सहायता ली जाती है। परंतु मतवाली चालवाला मानसून अपनी अनुमानित दिशा या गति बदलकर लोगों को प्रतिवर्ष खूब छकाया करता है जिसका पूरा प्रभाव कृषि प्रधान देश भारत पर पड़ता है। इसके दूरगामी आर्थिक और सामाजिक परिणाम देखने को मिलते हैं।

मानसून की उत्पत्ति, दिशा तथा गति को प्रभावित करने वाले एक नहीं, अनेक कारक हैं; जिनमें सूर्य-किरणें एल नीनो जेटपवन के अलावा हिमालय पर्वत पर हिम सघनता और स्थल पर बढ़ते-घटते ताप मुख्य हैं। मानसून की जानकारी के लिए विस्तृत कार्यक्रम बनाए गए और कार्यान्वित किए गए हैं। इनमें भारत सहित कई देशों ने भाग लिया। फिर भी, मानसून पवन संबंधी अनेक रहस्यों का पूरी तरह से उद्घाटन नहीं हो सका है। मानसून के प्रभाव भारतीय उपमहाद्वीप के अलावा दक्षिण एशिया तथा अफ्रीका पर पड़ते हैं। अन्य जलवायु वाले देशों में भी मौसम का मिज़ाज बिगड़ने लगा है। ऐसी स्थिति में भारतीय उपमहाद्वीप में होने वाले आकस्मिक मौसम परिवर्तन तथा उनके संभावित कारणों का विश्लेषण भी समीचीन होगा।

भारत में अगर मौसम का मिज़ाज बिगड़ता है तो कोई जरूरी नहीं कि उसकी वजह अरब सागर या आसपास ही हो, बल्कि यह भी हो सकता है कि दूर, उत्तरी अटलांटिक महासागर में कहीं किसी जगह प्रकृति के साथ होने वाली छेड़छाड़ हमें यहां कड़ाके की ठंढ में ठिठुरने के लिए मजबूर कर रही हो।

भारतीय वैज्ञानिकों ने अन्य देशों के वैज्ञानिकों के साथ मिलकर मौसम के मिज़ाज की गुत्थियां सुलझाने के खातिर उसके हजारों साल का इतिहास खंगाला है और वे इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि एशियाई मौसम में आने वाले उतार-चढ़ाव का काफी हद तक दारोमदार उत्तरी अटलांटिक महासागर के घटनाक्रम पर है।

आई आई टी, खड़गपुर और अमेरिका के नेशनल ओशेनिक एंड एटमॉस्फियरिक एडमिनिस्ट्रेशन के वैज्ञानिकों ने मौसम का मिज़ाज जानने के लिए ओमान के निकट अरब सागर की तलहटी से गर्दोगुबार जमा किए और उससे उस क्षेत्र के मौसम की पिछले 10 हजार साल की तस्वीर उकेरी।

चर्चित अंतर्राष्ट्रीय ख्याति की विज्ञान पत्रिका नेचर के 1999 के 23 जनवरी अंक में प्रकाशित अध्ययन रिपोर्ट में उत्तर अटलांटिक जलवायु और एशियाई मानसून के अंतःसंबंधों को उकेरा गया गया है। इससे पहले भी कई अध्ययनों में उत्तर अटलांटिक जलवायु और एशियाई मानसून के अंतःसंबंधों को उजागर किया जा चुका है, लेकिन यह पहला मौका है जब इस मामले में 20 हजार साल के इतने लंबे समय के लेखा-जोखा को आधार बनाया गया।

अध्ययन दल में शामिल डेविड एम. एंडरसन बताते हैं कि पिछले 10 हजार साल के दौरान उत्तर अटलांटिक के गर्म होने और ठंड होने का चक्र चला है, जबकि एशिया में मानसून के उतार-चढ़ाव का सिलसिला दिखा है। यह अध्ययन दोनों के अंतःसंबंधों को उजागर करता है। वह बताते हैं कि अनुसंधानों से पता चला है कि तिब्बती पठार पर जमी बर्फ की मात्रा इस मामले में एक प्रमुख भूमिका निभाती है।

वसंत में जब जमीन गर्म होने लगती है, हवा जमीन की सतह से ऊपर उठती है और उससे विभिन्न दबावों के क्षेत्र निर्मित होते हैं जो मानसून को एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाते हैं।

वसंत में या फिर ग्रीष्मकाल की शुरुआत में अगर पठार पर ज्यादा बर्फ जमा है तो वह पिघलने में और वाष्प में बदलने में सूर्य की गर्मी का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल कर लेती है। ऐसे में जमीन देर से गर्म हो पाती है। एंडरसन बताते हैं कि सर्दियों में पठार पर जितनी ज्यादा बर्फ होगी, मानसून उतना ही कमजोर होगा।

अनुसंधानकर्ताओं का प्रयास है कि जब उत्तर अटलांटिक ठंडा होता है तो वहां से बहने वाली हवा के रास्ते में आने वाले क्षेत्र ज्यादा समय तक ठंडे रहते हैं। एंडरसन का कहना है कि तिब्बत का पठार भी उत्तर अटलांटिक से चलने वाली हवाओं के रास्ते में आता है। अगर वहां ज्यादा समय तक ठंड रही तो उस दौरान जमने वाली बर्फ की मात्रा बढ़ जाती है जो वसंत या ग्रीष्मकाल में देर से पिघलती है। नतीजतन मानसून कमजोर पड़ जाता है।

उनका यह भी कहना है कि मानसून और बर्फ का यह रिश्ता अगली सदी में मजबूत मानसून का सबब बन सकता है क्योंकि उष्णकटिबंध के मुकाबले उत्तरी गोलार्ध का तेज रफ्तार से गर्म होने का सिलसिला जारी है।

दूसरे अध्ययनों के अनुसार सूरज की रोशनी की मात्रा में परिवर्तन का सरोकार उत्तर अटलांटिक की जलवायु और एशियाई मानसून दोनों से है।

अनुसंधानकर्ता अभी किसी ठोस नतीजे तक नहीं पहुंच पाए हैं कि सूर्य किस तरह से प्रणाली को प्रभावित करता है। उनके सामने अब भी यह सवाल बना हुआ है कि क्या सूर्य स्वतंत्र रूप से हरेक प्रणाली को प्रभावित करता है या फिर सूर्य की रोशनी की मात्रा में तब्दीली उत्तर अटलांटिक वायु प्रवाह की तीव्रता को प्रभावित करती है जो फिर मानसून को प्रभावित करता है। उनका कहना है कि अभी इस प्रक्रिया को समझने के लिए और अधिक अध्ययन करने की जरूरत है।

2. मानसून : आए कहां से – जाए कहां रे...

जेठ-वैशाख की तेज धूप से धरती तवे-सी गर्म हो जाती है। गर्म हवा और अधिक तापमान से समस्त जीवधारी व्याकुल हो जाते हैं। किंतु इस कष्टदायक ताप में ही वर्षा की शीतल फुहार का रहस्य छिपा है। प्रकृति देवी की ऐसी विचित्र व्यवस्था है कि भूतल के अधिक गर्म होने पर वहां का वायुभार कम होने लगता है। फलस्वरूप उच्चभार वाले महासागरीय क्षेत्र में हवा का बहाव निम्न वायुभार वाले थल भाग की ओर होता है। हिंद महासागर की विशाल जल राशि के ऊपर से बहती हुई ये हवाएं यथेष्ट जलवाष्प ग्रहण कर मेघवाहिनी के रूप में भारतीय उपमहाद्वीप में आती हैं। प्रतिवर्ष मई-जून के महीने में मानसून पवन के सृजन तथा बहाव की यह घटना दुहराई जाती रही है।

अपने देश भारत में बरसात लाने वाली हवा की प्रतीक्षा हम कितनी आतुरता से करते हैं, यह बात जून-जुलाई में प्रकाशित मौसम संबंधी समाचारों से स्पष्ट हो जाता है। सभी समाचार पत्रों में मौसम के संबंध में जानकारी देने वाले समाचारों को प्रमुखता से छापा जाता है। भारत में मानसून के आगमन को अधिक महत्व दिए जाने का एक कारण यह भी है कि कृषि प्रधान देश में किसान खेती का कार्य वर्षा होने के साथ ही आरंभ करते हैं।

केवल कृषि कार्यों के लिए ही नहीं, सामूहिक यात्राओं, सैन्यबलों के आवागमन तथा यातायात सुविधाओं की व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए भी मानसून की स्थिति का प्रबोधन (मॉनिटरिंग) किया जाता रहा है। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के अलावा सुदूर संवेदन तथा आधुनिक कंप्यूटर प्रणाली का उपयोग भी अब इस कार्य के लिए किया जाने लगा है।

भूभौतिक विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान प्रो. हेली ने दीर्घ विश्लेषण के बाद यह निर्णय दिया कि मानूसन पवन के सृजन का मुख्य कारण स्थल और

सागर के बीच तापांतर का होना है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि उत्तरी गोलार्ध के उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में मई और जून के महीनों में अधिक गर्मी पड़ती है। इस वजह से एशिया का भूभाग, विशेषकर इसके मध्य का पठारी हिस्सा अधिक तप्त हो जाता है। अधिक ताप से वहां का वातावरण प्रभावित होता है और स्थल भाग की वायुपट्टियों में परिवर्तन आने लगता है। किंतु इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्ध तक फैली हुई हिंद महासागर की विशाल जल राशि का ताप भूखंड के ताप से तुलना में काफी कम रहता है। जल और थल के तापों के इस अंतर से क्रमशः दक्षिणी हिंद महासागर में उच्चदाब तथा एशिया महाद्वीप के मध्य भाग में निम्न दाब की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। फलस्वरूप दक्षिण के उच्च दाब वाले सागरीय क्षेत्र से हवा का तेज बहाव एशिया के मध्य में स्थित निम्न दाब की ओर हो जाता है। इस तरह से मानसून पवन का बहना आरंभ हो जाता है। वायु प्रवाह हिंदमहासागर के सुदूर दक्षिणी भाग (ऑस्ट्रेलिया और मालागासी के बीच का इलाका) से उत्तर की दिशा में प्रभावित होने लगता है। एशिया के मध्य में स्थित निम्न दाब के क्षेत्र में पहुंचने के लिए ये तेज हवाएं विषुवत् रेखा को पार करती हैं। यहां पृथ्वी के घूमने की गति के कारण इन हवाओं के बहने की दिशा में कुछ परिवर्तन आ जाता है।

सीधी उत्तर की ओर बहनेवाली ये हवाएं घूमती पृथ्वी की दैनिक गति के कारण मुड़कर उत्तर-पूर्व की कोणात्मक दिशा में बहने लगती हैं। इस प्रकार मानसून पवन का वेगवान प्रवाह सीधा अरब देशों की ओर न होकर भारतीय उपमहाद्वीप की ओर हो जाता है।

विशाल मेघवाहिनी

सागर के अगाध जल पर बहुत दूर तक बहने के कारण ये हवाएं जलपूरित होती हैं और बादलों की विशाल राशि लेकर प्रायद्वीपीय भारत और म्यांमार (बर्मा) के पश्चिमी तट से एशिया के विशाल भूभाग में प्रवेश करती हैं, हालांकि विषुवत रेखा को पार करते समय इनका जल कुछ कम हो जाता है। किंतु सागर से ये हवाएं पुनः अधिक जल प्राप्त कर लेती हैं। मानसून हवाएं भारी मात्रा में भाप के रूप में पानी लेकर तप्त भूभाग पर फैले

नीले आसमान को अपनी बादलों की विशाल सेना से भर देती है।

ऊष्मगतिकी (थर्मोडाइनैमिक्स) के सिद्धांतों के अनुसार गर्म भूमि के ऊपर उष्ण हवा की तह के संसर्ग में आने पर ताप की विषमता उत्पन्न होती है। इस कारण मेघपूर्ण हवाओं में हलचल होने लगती है। फलस्वरूप उनमें चक्रवातीय विक्षोभ (साइक्लोनिक डिस्टरबैन्स) पैदा हो जाते हैं। इससे तेज झंझावात, गर्जन तथा बिजली की चमक के साथ मौसम की वर्षा की पहली बूंद प्यासी धरती पर गिरती है। प्रायः मानसून के आगमन से पूर्व स्थानीय कारणों से वर्षा की शीतल फुहार आती है, जिसे पूर्व मानसून (प्री-मानसून) वर्षा कहते हैं। इस प्रकार भारत भूमि में बरसात की शुरुआत होती है।

अनिश्चित स्थिति

महासागर के आंदोलित वक्षस्थल से ऊपर आकाश में उठकर तप्त धरती पर बरसने वाला मानसून तेज गति और गर्जन के साथ ही अपनी मतवाली चाल के लिए भी मशहूर है। उसके आगमन का समय और इससे विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली वर्षा की मात्रा का 70 प्रतिशत से अधिक दक्षिण-पश्चिम मानसून से प्राप्त होता है। परंतु इस दक्षिण-पश्चिम मानसून का प्रभाव लगभग 100 दिनों तक पूरे जोर-शोर से भारतीय उपमहाद्वीप में रहता है। ऐसा अनुमान है कि पश्चिमी तट के निकट (पश्चिमी घाट क्षेत्र) महाबलेश्वर में 500 घंटे, बेंगलूर में 400, मुंबई में 300 तथा तिरुवनंतपुरम् में मात्र 110 घंटे की वर्षा की मात्रा रिकार्ड की गई है। एक ही क्षेत्र के विभिन्न स्थानों में एक ही साल में ऐसी भिन्नता मानसूनी वर्षा की असमानता का उदाहरण है। यही नहीं, दूसरे वर्ष इस मात्रा में पुनः अंतर आने की पूरी संभावना बनी रहती है। फिर भी, सामान्यतः इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि दक्षिण-पश्चिम मानसून से भारत के पश्चिमी तट से उत्तर में हिमालयी इलाके तक लगभग 100 दिनों तक की अवधि में बरसात का मौसम कायम रहता है और थोड़ी-थोड़ी वर्षा बराबर होती रहती है, जिससे कृषि क्षेत्रों में खेतीबाड़ी का काम चलता रहता है।

आगमन में विलंब

जब मानसून का आगमन देर से होता है तब वर्षा की मात्रा अपेक्षाकृत रुक-रुक कर कम होती है। मानसून पवन के देर से पहुंचने पर आरंभ में वर्षा धीरे-धीरे होती है, फिर अचानक भारी वर्षा हो जाती है। कृषि फसलों पर प्रायः इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। किंतु भारतीय कृषि के लिए मानसून की इस मार को सहने के अलावा और कोई दूसरा रास्ता नहीं है। देर से वर्षा होने की वजह से फसल पीछे हो जाती है, फिर अचानक अधिक मात्रा में वर्षा हो जाने पर उगी फसलों के खराब होने या बह कर खराब हो जाने का खतरा बना रहता है। विशेषकर धान की फसल के लिए अतिवृष्टि या अनावृष्टि का मानसूनी खेल हानिकारक साबित होता है। ऐसी परिस्थितियों से बचने के लिए कृषि वैज्ञानिकों ने धान के पौधों की नई किस्में तैयार की हैं। बौनी किस्म की इन फसलों में सूखे से उत्पन्न कठिनाइयों का सामना

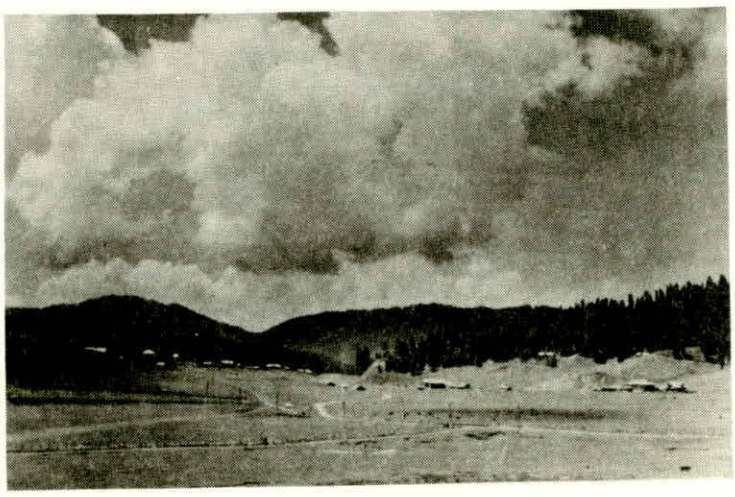

बरसने को आतुर – घुंघराले बादल

करने की ताकत रहती है। साथ ही बाढ़ के तेज बहाव में भी बरबाद होने से बच जाती है। सामान्यतः जुलाई-सितंबर का महीना मानसून के लिए सबसे अधिक महत्व का समय है। इन दिनों मानसून भारतीय उपमहाद्वीप पर पूर्ण रूप से छाया रहता है। दक्षिण में वृष्टिछाया के क्षेत्र तथा पश्चिम के मरुस्थल को छोड़कर संपूर्ण भारत में मानसून की बरसात बनी रहती है।

विश्रांति और तीव्रता

मानसून की सबसे तेजगति कभी जुलाई तो कभी अगस्त में हुआ करती है। इसके बाद कुछ दिनों के लिए एक विश्रांति काल आता है, जो प्रायः दस से बीस दिनों का होता है। इसका मुख्य कारण विषुवत् रेखीय पट्टी में होने वाले वायविक परिवर्तन हैं। इस व्यापारिक पवन (ट्रेड विंड) का प्रवाह-पथ खिसकता हुआ पश्चिम की ओर चला जाता है जिससे दक्षिण-पश्चिम मानसून को यथेष्ट गति नहीं मिल पाती है और वह शिथिल हो जाता है। तभी बंगाल की खाड़ी में (या अरब सागर में भी) चक्रवात (साइक्लोन) का सृजन होने लगता है। ये चक्रवात तेज गति से सागरीय भाग को पार कर पूर्वी तट से अथवा पश्चिम में गुजरात के रास्ते से भारत में प्रवेश करते हैं। बंगाल की खाड़ी से आने वाले चक्रवातीय तूफानों की शाखा गंगा के विस्तृत मैदान की ओर जाती है। दूसरी शाखा बंगलादेश से होती हुई अरुणाचल और नागालैंड की ओर जाकर भारी वर्षा करती है।

बरसात का अवसान

भारत के पश्चिमी तट के इलाके में अगस्त के बाद से ही वर्षा कम होने लगती है। सितंबर के बाद मध्य और उत्तरी भारत के इलाकों में वर्षा की मात्रा क्षीण होने लगती है। इस समय तक एशिया महाद्वीप के मध्य स्थित निम्न दाब का केंद्र समाप्त हो जाता है और फिर उच्च दाब की स्थिति आने लगती है। इस प्रकार अक्टूबर तक उत्तर भारत में वर्षा का मौसम समाप्त हो जाता है। पीछे की ओर हटते हुए इस मानसून से उत्तरी-पूर्वी भारत के तटीय क्षेत्रों में पुनः वर्षा का आरंभ हो जाता है। मानसून पवन की इस शाखा को उत्तरी-पूर्वी मानसून कहते हैं; जो बंगाल की खाड़ी के तटों पर और

दक्षिण भारत को वर्षाजल से सराबोर करता रहता है। यहां अक्टूबर से लेकर नवंबर तक भारी बरसात होती है।

अक्टूबर के अंत तक दक्षिण-एशिया मानसून भारतीय उपमहाद्वीप में अपनी बरसाती लीला दिखाकर विदाई के लिए तैयार हो जाता है। वसुंधरा जलवर्षा प्राप्त कर तृप्त हो चुकी होती है। मैदानों में दूर-दूर तक फैले खेतों में बोए गए बीजों से उगी फसलें लहराने लगती है। ताल-तलैया और नदियां जल से पूर्ण हो छलकने लगती हैं। पर्वत श्रृंखलाएं और घाटियां वनस्पति की हरी चादर लपेट लेती हैं। मेघ रहित नीले आसमान में उदित सूर्य की सुनहरी किरणें वर्षा जल से धुली धरती के सस्य श्यामल कलेवर पर खेलने लगती हैं। इस प्रकार नैसर्गिक उल्लास और उमंग से परिपूर्ण यह धरती वसंतागमन के स्वागत के लिए तैयार होकर प्रतीक्षा करने लगती है।

3. बादल – तेरे रूप अनेक

सिद्धांततः गर्म हवा फैलती है और ऊपर उठती है, ऊपर उठने पर एक ऊंचाई तक जाने से हवा ठंडी होने लगती है। इस क्रिया में हवा में मौजूद जलवाष्प द्रवीभूत होकर जलबुंदकियां बनाती हैं। यदि हवा और अधिक ऊंचाई पर पहुंचती है तो सघन होते हुए ये जलबुंदकिया हिमकण बन जाते हैं। ऊपर आसमान में भारी मात्रा में मौजूद इन जलबुंदकियों या हिमकणों के समूह से बादल या मेघराशि का निर्माण होता है। हवा के बहाव के साथ ही आसमान में तैरते बादलों का समूह जब अधिक सघन होता है तो जल की बूंदों के रूप में या ऊँचे पर्वतों पर हिम के रूप में बरसने लगता है।

जैसा कि आपने देखा होगा कि खुले आसमान में, विशेषकर बरसात में बादलों के विशाल समूह आते-जाते हैं। कभी इनसे वर्षा होती है तो कभी ये बिन बरसे ही भाग जाते हैं। कई बार आसमान के विशाल फलक पर इन मेघराशियों द्वारा तरह-तरह की आकृतियों का बनना-बिगड़ना भी एक मनमोहक दृश्य होता है। इन बादलों को मूलतः तीन समूहों में विभाजित किया गया है। ल्युक हार्वर्ड नामक वैज्ञानिक ने 1804 में इन बादलों का नामकरण लैटिन में रखा, ये हैं-सिरस यानी घुंघराले बालों जैसे, पक्षाभ मेघ (क्युमलस) यानी कपासी या रुईया – ऊन की ढेर-जैसे तथा स्तरी मेघ स्ट्रैटस यानी सीधे परतदार बादल। इन तीन प्रकार के बादलों को उपवर्गों में भी बाँटा गया है। इस तरह के रंग-रूप और ऊँचाई के अनुसार बादलों को दस उपवर्गों में नामांकित किया गया है।

ये सभी बादल मौसम और होने वाली वर्षा की जानकारी देते हैं। आसमान में काफी ऊँचाई पर हिमकण वाले बादल तो बालों की लटें या घूंघट की तरह दीखते हैं। सीरस प्रकार के बादल होते हैं। ये बादल खराब मौसम का संकेत हैं। पतली-पतली तहों वाले सफेद दूधिया बादल, काफी ऊँचाई पर होने पर भी चौबीस घंटों में वर्षा देते हैं जिन्हें पक्षाभ-स्तरी

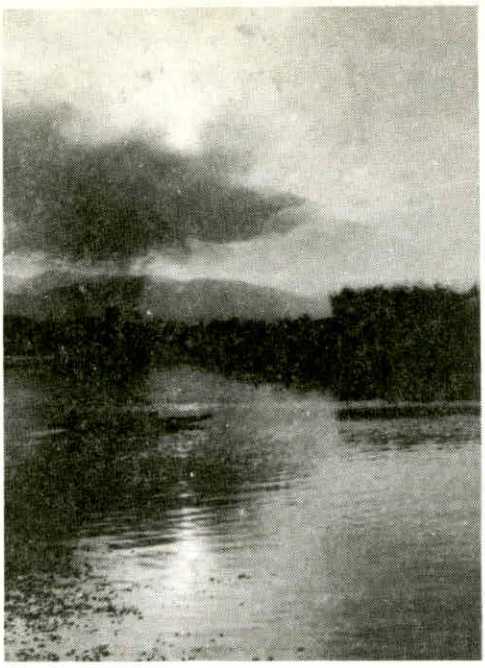

कश्मीर की झीलों पर वर्षा वाले मानसूनी बादल

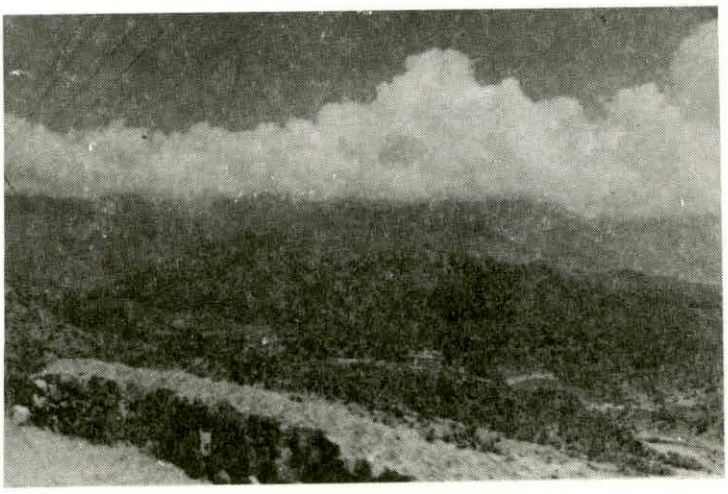

मध्य भारत में कपासी प्रकार के मानसूनी मेघ

(सिरो-स्ट्रेटस) बादल कहते हैं। गाढ़े रंग के झीने बादल कभी-कभी बरसात लाते हैं या तैरते हुए चले जाते हैं, इन्हें मध्य-स्तरी (आल्टोस्ट्रेटस) बादल कहते हैं। ऊँचाई पर फैले इन बादलों से सूर्य के चतुर्दिक् रूपहला या सुनहला बिंब दिखाई पड़ता है। दिन में आल्टोस्ट्रेटस बादल की पहचान यह 'सूर्यमंडल' की छवि भी है। खुले नीले आकाश में अचानक एक ओर उभरकर आए और विशालकाय गोभी की तरह उभरे आकार में फैले बादलों को कपासी (क्युमलस) प्रकार का माना जाता है। आसमान में गर्मियों के उत्तरार्ध में टेढ़ी-मेढ़ी गोलाई लिए धब्बों की तरह फैले बादल-स्तरी कपासी (स्ट्रैटोक्युमलस) होते हैं।

आकाश में लंबी-लंबी गोलाइयों के साथ फैले धारी वाले बादल पक्षाभ कपासी (सिरोक्युमलस) होते हैं, जो मौसम की अनिश्चितता प्रदर्शित करते हैं। आसमान की निचली सतह पर सूर्य किरणों से लाल होने वाले बादल मध्य कपासी (आल्टोक्युमलस) प्रकार के हैं, जो सूर्यताप से हमारी रक्षा करते हैं और मौका पाते ही तेज बौछार के साथ धरती पर बरस पड़ते हैं।

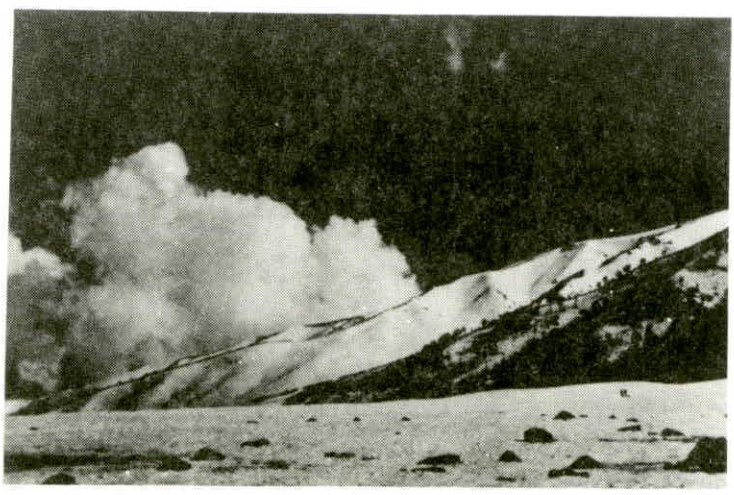

हिमालय के हिममंडित शिखरों पर मानसूनी बादल

घने काले कजरारे बादल जो घनघोर वर्षा लाने वाले होते हैं – निंबस प्रकार के होते है। लैटिन में निंबस का अर्थ 'वर्षा' होता है। अतः ऐसे बादलों को वर्षा-मेघ (निंबस स्ट्रैटस) मेघ कहा जाता है। वर्षा की रिमझिम फुहार देने वाले हल्के काले रंग वाले बादल 'स्ट्रैटस' प्रकार के होते हैं। ये आसमान में तहदार दिखाई पड़ते हैं, किंतु पर्वतीय प्रदेशों तथा धरती के निकट घना कोहरा बनाते हैं।

आसमान में अधिक ऊँचाई पर फैले रहने वाले बादल जो प्रायः ओला वृष्टि या बड़ी-बड़ी बूंदों की बौछार करते हैं कपासी वर्षी (क्युमलोनिंबस) मेघ कहे जाते हैं।

तरह-तरह के आकार-प्रकार वाले ये रंग-बिरंगे बादल वर्षा के साथ-साथ क्षेत्रीय आधार पर मौसम का संकेत भी देते हैं। खुले आसमान में उमड़-घुमड़ कर आने वाले बादल भांति-भांति के आकार बना लेते हैं जिनका अवलोकन करने पर किस व्यक्ति का मन मयूर नहीं नाच उठेगा।

4. मानसून की देन – बाढ़ और सूखा

हमारे देश में बरसात के मौसम में प्रतिवर्ष कहीं न कहीं बाढ़ आती रहती है। अगर बाढ़ नहीं आई तो सूखा चला आता है। इससे भी अधिक विडंबनापूर्ण स्थिति यह है कि एक ही इलाके को एक ही साल में बारी-बारी से सूखे तथा बाढ़ दोनों का दारुण दुःख भुगतना पड़ता है। यह मानसूनी बरसात की विशेषता है कि कहीं बाढ़, और कहीं सूखे का चक्र चलता रहता है।

अतिशयताओं के देश भारत में मौसम की सामान्य स्थितियों में भी काफी भिन्नताएं पाई जाती है। उदाहरण के तौर पर पूर्वोत्तर भारत में स्थित चेरापूंजी में सालाना वर्षा का औसत 11 (ग्यारह) मीटर के करीब है, जबकि पश्चिमोत्तर क्षेत्र में स्थित जैसलमेर में जलवर्षा का औसत केवल 0.2 मीटर का है। लेकिन इस औसत में भी प्रति वर्ष अंतर आता रहता है, जिससे मौसम की असामान्य स्थिति उत्पन्न होती है। बाढ़ और सूखा दोनों मौसम की असामान्य स्थितियां हैं, जिनके कारणों पर अब तक वैज्ञानिक नियंत्रण कर पाने में समर्थ नहीं हो सके हैं। फिर भी प्रयास जारी है कि इनके प्रभाव को कम करके जन-धन की हानि को रोका जा सके।

बाढ़ की स्थिति

मौसम वैज्ञानिकों ने बाढ़ की स्थिति को इस प्रकार से परिभाषित किया है–

किसी नदी में जलप्रवाह का अपेक्षाकृत ऊँचा स्तर अथवा वैसी स्थिति जो सामान्य से अत्यधिक हो जिससे कि निचली भूमि जलमग्न हो जाए। वह जलराशि जो तेज गति से उफनती हुई उस भूमि पर फैल जाए जहां सामान्यतया पानी की धारा नहीं पहुंचती थी। यही बाढ़ की स्थिति है।

प्रायः यह देखा जाता है कि वर्षा अथवा नदी जल के बिखराव के कारण भी बाढ़ आ जाती है, जबकि जल उसी गति से बाहर नहीं निकल पाता, जितनी गति से उसके निकलने की आवश्यकता होती है। जल निकास नालियों की अपर्याप्त क्षमता के कारण तटबंधों के पीछे जल का जमाव होना भी बाढ़ की स्थिति उत्पन्न करता है।

उल्लेखनीय है कि किसी नदी के जलग्रहण क्षेत्र या आवाह क्षेत्र में अचानक अधिक वर्षा के कारण भी बाढ़ आती है। वर्षा की मात्रा तथा जलग्रहण क्षेत्र की विशेषताओं के ऊपर ही बाढ़ की प्रकृति तथा आकार निर्भर करता है।

बाढ़ के कारण

सामान्यतः बाढ़ तब आती है जब नदी, झील अथवा तालाब का जल तट से ऊपर होकर बहने लगता है। यह अधिक वर्षा अथवा उपयुक्त जल निकास की व्यवस्था के अभाव के कारण होता है। किनारों के ऊपर से नदी जल का बहाव नदी-तल के भर जाने या प्रवाह में बाधा के कारण भी होता है। नदी, सरिता या जलधाराओं के मिलन-स्थल (संगम) पर भी बाढ़ की शंका बनी रहती है। गंगा तथा गोदावरी नदियों के बहाव क्षेत्र में ऐसा भी देखने में आता है कि मुख्य नदी का जलस्तर ऊँचा हो जाता है और सहायक नदियों से होकर आसपास में फैलकर बाढ़ की स्थिति उत्पन्न करता है।

पर्वतों से उतरकर मैदानी भागों में आने वाली नदियों में बरसात के समय बाढ़ की संभावनाएं अधिक रहती है। पर्वतों पर होने वाली अधिक जलवर्षा के प्रवाह को रुकने के लिए पेड़-पौधे या मिट्टी नहीं है तो वह अबाध गति से ढलानों पर बहती हुई नीचे मैदान में आकर बाढ़ लाती है। पहाड़ी ढालों पर वनों के रहने से पत्तियों के आच्छादन के कारण वर्षा-जल का बहाव तेज नहीं होता है और मिट्टी का कटाव भी कम होता है। किंतु वनों के काटे जाने से जलवर्षा के कारण पहाड़ी ढालों पर प्रवाह की गति तेज होती है मिट्टी का कटाव बढ़ता है, जिसके फलस्वरूप नदियों में बाढ़ आने लगती है।

भारत के बाढ़ वाले मैदानी भागों में भूमि के उचित उपयोग पर नियंत्रण की कमी और असंतुलित निर्माण कार्यों की वजह से जलप्रवाह बाधित होता है और बाढ़ की स्थिति पैदा हो जाती है।

बाढ़ की चेतावनी

संभावित लक्षणों को परख कर यदि बाढ़ के आने की पूर्व सूचना समय रहते दिए जाने की समुचित व्यवस्था हो तो जन-धन के नुकसान से बचाव हो सकता है। यह संतोष की बात है कि मानसूनी बरसात के समय केंद्रीय जल आयोग के द्वारा भारत के विभिन्न बाढ़ क्षेत्रों में पूर्व-चेतावनी देने के लिए वैज्ञानिक प्रबंध किए गए हैं।

बाढ़ की चेतावनी देने के लिए विभिन्न नदी बेसिनों में जल प्रवाहमापी यंत्रों को लगाया गया है, साथ ही बेतार यंत्रों द्वारा स्थिति की नियमित सूचनाएं क्षेत्रीय तथा केंद्रीय मुख्यालयों को भेजी जाती हैं। इसके अलावा उत्तर भारत तथा उत्तर-पूर्वी क्षेत्रों के बाढ़ वाले इलाकों के लिए अलग से गंगा बाढ़ नियंत्रण आयोग नामक संगठन की स्थापना की गई है, जो बाढ़ संबंधी पूर्वानुमान देने का कार्य वैज्ञानिक ढंग से करता है।

सूखा या अनावृष्टि

भारी वर्षा से आई भयंकर बाढ़ लोगों के लिए नुकसान का पैगाम बनकर आती है। लेकिन अनावृष्टि से उत्पन्न सूखा और उसका प्रभाव अधिक दुःखदाई होता है। सूखे का अर्थ है – संभावित वर्षा से कम वर्षा, सामान्य वर्षा से 75 प्रतिशत या 50 प्रतिशत से कम वर्षा की स्थिति को अनावृष्टि कहा जाता है। अनावृष्टि की यह परिभाषा सटीक नहीं होते हुए भी पर्याप्त है। लेकिन यह भी ध्यान रखने की बात है कि फसलों के लिए वर्षा की कुल मात्रा के अलावा यह भी देखने की बात है कि वर्षा की कितनी मात्रा कितने अंतराल के बाद होती है। जरूरी नहीं कि वर्षा में मामूली-सी कमी या बढ़ोतरी का कृषि उत्पादकता से सीधा संबंध हो। इसलिए वांछनीय होगा कि संपूर्ण मौसम के दौरान होने वाली वर्षा के ऐसे सूचकांक तैयार किए जाएं जो कृषि उत्पादकता से जुड़े हों तथा जिनसे मिट्टी की नमी का भी पता चल सके।

अब हमारे वैज्ञानिकों ने उन क्षेत्रों की पहचान कर ली है, जहां प्रायः हर साल सूखे की स्थिति के आने की संभावना बनी रहती है। सामान्य रूप से ये ऐसे क्षेत्र हैं, जहां औसत वर्षा बहुत कम होती है। करीब २० सेमी. औसत वर्षा वाले क्षेत्र में 15 सेमी. की कमी या वृद्धि से गंभीर बाढ़ या भयंकर सूखे की स्थिति पैदा हो सकती है। आश्चर्य की बात है कि अचानक बाढ़ आने की अधिक संभावना रेगिस्तानों में होती है। कम वर्षा के कारण मरुस्थल में जल-निकासी की अच्छी स्थायी व्यवस्था नहीं होती है। वहां काफी संख्या में प्राकृतिक नदी नाले नहीं होते हैं। इसलिए बरसात में अचानक हुई तेज वर्षा से बाढ़ की स्थिति पैदा होती है। दूसरी तरफ वर्षा में 15 सेमी. की कमी सूखे का कारण बन जाती है।

इससे यह स्पष्ट है कि सूखा-क्षेत्रों में जल की समस्या अधिक विकट है। यहां जल की उपलब्धि कम है तो उसे संजोने की कोशिश की जा रही है। वहीं किसी साल अचानक वर्षा होने से भयंकर बाढ़ आने का भय भी बना रहता है। यहां के निवासियों ने बरसों के अभ्यास से ऐसे तरीके निकाल रखे हैं और रहन-सहन की ऐसी आदत विकसित कर रखी हैं, जिससे उन्हें परिस्थिति की आवश्यकताओं के अनुरूप सूखे की स्थिति से अच्छे ढंग से निबटने की क्षमता पैदा हो गई है। वे उपयोग में आने वाले अधिकांश जल को जमा करने तथा पानी की बरबादी को रोकने के उपायों की अच्छी जानकारी रखते हैं। इन क्षेत्रों में जल के उचित और अधिकतम उपयोग के लिए प्रभावी अनुसंधान कार्य किए गए हैं।

इस दिशा में एक व्यावहारिक और प्रभावशाली तरीका यह है कि जलबहुल क्षेत्रों से पानी को उन क्षेत्रों में लाना जहां उसकी आवश्यकता है। उदाहरणार्थ हिमालयी इलाके में प्राप्त होने वाले अधिक तथा फालतू जल को सदुपयोग हेतु राजस्थान की थार मरुभूमि तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया गया है। पश्चिमोत्तर भारत में निर्मित इंदिरा गांधी नहर प्रणाली का निर्माण आधुनिक युग में एक सराहनीय प्रयास है। संभव है कि वर्तमान परिस्थितियों में यह प्रणाली सर्वाधिक अनुकूल साबित नहीं हो, किंतु वैज्ञानिक दृष्टि से हमारी मौलिक नीति उचित प्रतीत होती है। मरुस्थलीय क्षेत्रों में सिंचाई तथा जल के अन्य उपयोग से अनेक प्रकार की नई समस्याएं उठ खड़ी होने लगी हैं। जल निकास के लिए पर्याप्त प्राकृतिक साधनों के अभाव

में सिंचन जल बहुत अधिक परिमाण में जमीन के अंदर रिसकर चला जाता है, जिससे भूमि के लवणीकरण की समस्या सामने आने लगी है। अंततोगत्वा यह मानना पड़ेगा कि बाढ़ और सूखा मानसूनी वर्षा के आधिक्य अथवा कमी से पैदा होने वाली विकट स्थितियां हैं। इसके समाधान के लिए ऐसे निर्माण कार्य पूरे करने होंगे, जिससे बहुत अधिक वर्षा होने से फालतू जल को रोक कर सूखे की स्थिति में उपयोग के लिए रखा जा सके। इसके लिए बांधों का निर्माण तथा जल संसाधन उपयोग की अनेक परियोजनाओं को रूपांकित करने का प्रयास हो रहा है।

बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम

प्रतिवर्ष बाढ़ से होने वाली अपार हानि को कम करने के उद्देश्य से सरकार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कई प्रकार के उपाय किए हैं। 1954 में बाढ़ की समस्या को राष्ट्रीय स्तर पर सुलझाने के लिए बाढ़ नियंत्रण कार्यक्रम बनाया गया था। उल्लेखनीय है कि तब से बाढ़ प्रवण क्षेत्रों के लगभग एक तिहाई भाग को उचित संरक्षण दिया जा चुका है। बाढ़ संकट से ग्रस्त ऐसे शेष इलाकों को भी सुरक्षा देने के उपाय किए जा रहे है। इस दिशा में प्रभावी उपायों को पूरा करने के लिए 1976 में राष्ट्रीय बाढ़ आयोग की स्थापना की गई।

देश में बाढ़ नियंत्रण के प्रभावी कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए केंद्र सरकार राज्य सरकारों के साथ मिलकर महत्वपूर्ण प्रयास करती रही है। यह ध्यान देने की बात है कि नदी जल तथा बाढ़ नियंत्रण कार्य भारतीय संविधान के अनुसार राज्यों का विषय है। फिर भी भारत सरकार ने 1990 से राज्यों के सहयोग से राष्ट्रीय स्तर पर बाढ़ प्रबंध का कार्यक्रम चालू किया है, जिसके अच्छे परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। इस आयोग को बाढ़ प्रबंध स्कीमों की तकनीकी और आर्थिक जांच, मूल्यांकन तथा प्रबोधन (मानिटरिंग) का काम सौंपा गया है। साथ ही रेल और सड़क पुल के अंतर्गत विद्यमान जल धाराओं की स्थिति का आकलन भी सम्मिलित है। यह आयोग देश की प्रमुख नदियों और बाढ़ प्रवण क्षेत्रों का वैज्ञानिक अध्ययन कर बाढ़ प्रबंधन की व्यापक योजना तैयार कर प्रस्तुत करने जा रहा है।

5. मतवाली चाल

रूपगर्विता चंचला नायिका के समान ही प्रवृत्ति है – भारतीय मानसून की। जैसे अपनी मस्तानी चाल से चंचला नायिका किधर चल देगी, कुछ कहा नहीं जा सकता, उसी प्रकार बादलों से भरे और इंद्रधनुष की रंगों से सजा मानसून अपनी मतवाली चाल से किधर को उड़ चलेगा तथा कहां घनघोर रूप में वर्षा की तेज फुहार छोड़ देगा –यह बता पाना अत्यंत कठिन है। यही नहीं, उसका अगला कदम क्या होगा — इसका अनुमान कर उसे नियंत्रित कर पाना संभव नहीं है।

बरसात के दौरान यह देखा जा सकता है कि कई बार वर्षा अकस्मात् आ जाती है, थोड़ी देर रुकती है और चली जाती है। फिर कई दिनों तक लोग विशेषकर किसान प्रतीक्षा करते रहते हैं और उसके दर्शन नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति भी आती है कि किसान कड़ी मेहनत कर खेतों को पानी देता रहता है, खेत गीला हो जाता है और दो-एक दिन बाद जोरदार वर्षा हो जाती है।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है मानसूनी वर्षा अनियंत्रित तथा अप्रत्याशित होती है। लेकिन बीसवीं सदी में इस दिशा में यथेष्ट वैज्ञानिक अनुसंधान तथा अध्ययन होते रहे हैं। अपनी धुन के पक्के कुछ वैज्ञानिकों ने मानसूनी वर्षा को वैज्ञानिक तरीकों से नियंत्रित करने का प्रयास किया है। किंतु यह प्रक्रिया जटिल और व्यय साध्य रही है। हालांकि यह भी एक सुखद तथ्य है कि कई ऐसे स्थानीय प्रयोगों में यथावांछित सफलता भी मिली है।

कृत्रिम रूप से वर्षा कराए जाने के तरीके को वर्षादायी मेघ में बीजारोपण पद्धति कहा जाता है। इस पद्धति में असमान फैले हुए बादलों में कुछ रासायनिक पदार्थों का छिड़काव किया जाता है जिससे बादल में

छोटे-छोटे बुंदकियां संघनित होकर बूंद बन जाती हैं और वर्षा होने लगती है। बीजारोपण पद्धति में छिड़काव के लिए सामान्यतः नमक, सिलवर आयोडायड और ठोस कार्बन डाईआक्साइड का उपयोग किया जाता है। विश्लेषण करने पर कृत्रिम वर्षा कराने की विधि का आधार वैज्ञानिक दृष्टि से ठोस प्रतीत होता है। बीजारोपित स्थिति में रासायनिक कणों के चतुर्दिक् जलवाष्प के संघनित होने की पूरी संभावना होती है और इस प्रयास में बादलों के बीच बूंदे बनने लगती हैं जो अंततोगत्वा धरती पर टपक पड़ती हैं। लेकिन किसी स्थल पर कृत्रिम वर्षा के लिए घने बादलों की उपस्थिति के अलावा भी कई अन्य अनुकूल परिस्थितियों का होना जरूरी है। बादलों में बीजारोपण के समय यदि हवा का बहाव तेज हो गया अथवा हवा का प्रवाह पथ सागर या पर्वत शृंखला की ओर हो गया तो सारा प्रयास विफल साबित हो सकता है।

भारत में अनेक व्यक्तियों तथा संस्थानों द्वारा ऐसे प्रयोग के द्वारा चमत्कारी प्रभाव उत्पन्न करने के सफल प्रयास हुए हैं। एक वैज्ञानिक ने करीब बीस वर्ष पहले सरकारी संस्था – वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद की देखरेख में यह प्रयोग कर दिखाया, जिसका काफी प्रचार भी हुआ था। किंतु बाद में सरकारी संस्थान के कई वरिष्ठ वैज्ञानिकों ने विश्लेषण के बाद यह सलाह दी थी कि यह पद्धति अत्यधिक व्यय साध्य है। अतएव भारत की आर्थिक स्थिति को देखते हुए इसका बड़े पैमाने पर उपयोग करना युक्तिसंगत नहीं है। उल्लेखनीय है कि बादलों में रासायनिक सामग्री के छिड़काव के लिए ऐसे वायुयानों का उपयोग नितांत आवश्यक है, जो अनुकूल समय में सामग्री लेकर तुरंत उड़ान भरने के लिए तैयार रहें। ऐसी तैयारी करने के बाद कृत्रिम वर्षा से मिला पानी काफी महंगा पड़ेगा, यही बात इसके उपयोग में बाधास्वरूप है।

मानसून पवन अपनी मतवाली चाल के लिए मशहूर तो है ही, इसकी चाल अप्रत्याशित तथा अनियंत्रित भी है। हमारे पौराणिक साहित्य में मानसून पवन के लिए मेघदूत, यायावर, विनाशकारी, क्रूर-अकरुण, असंवेदी- जैसे अनेक संबोधनों का उपयोग किया गया है। इन साहित्यिक और काव्यमय विशेषणों के बाद आधुनिक युग में मानसून का नये सिरे से वैज्ञानिक विश्लेषण प्रारंभ किया जा चुका है।

इसकी मतवाली चाल और विनाशकारी रूप को नियंत्रित करने के लिए मौसम वैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार से प्रयत्न किया है। इसे नियंत्रित करके इसके विनाशकारी प्रभाव को कम करने की पूरी कोशिश अब भी जारी है। मौसम पूर्वानुमान के अलावा दूरसंवेदी यंत्रों, उपग्रहों तथा कृत्रिम वर्षा की व्यवस्था इस दिशा में किए जा रहे प्रमुख तथा महत्वपूर्ण प्रयास हैं।

चमत्कारी और नाटकीय किंतु अव्यावहारिक तथा व्यय साध्य होने पर भी कृत्रिम वर्षा की पद्धति तथा उसके परिणामों को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। भारत के कतिपय वरिष्ठ वैज्ञानिक इस दिशा में भी अनेक संभावनाओं की उम्मीद करते हैं। प्रत्येक वर्ष भारत में मानसूनी वर्षा की धूप छांव आरंभ होती है – कहीं अतिवृष्टि तो कही अनावृष्टि, कहीं बाढ़ तो कहीं सूखा। इन परिस्थितियों में केवल मौसम वैज्ञानिकों का ही नहीं, बल्कि सुधी पाठकों का ध्यान भी बरबस कृत्रिम वर्षा की पद्धति की ओर चला जाता है।

कल्पना की उड़ान ही सही, आप भी ज़रा गौर कर देखे कि कृत्रिम वर्षा की पद्धति को अपनाकर हम हरियाणा और हिमाचल में फैले बादलों को राजस्थान और गुजरात के सूखे क्षेत्रों में लाकर बरखाबहार का दृश्य उपस्थित कर सकते हैं। मध्यप्रदेश और आंध्रप्रदेश के अति वृष्टि वाले इलाकों से मेघराशि लाकर मराठवाड़ा को सींच सकते है। उधर मेघालय और बंगाल के बादलों को खींच कर उड़ीसा और छोटा नागपुर के सूखे इलाकों को आबाद किया जा सकता है।

ऐसी कल्पना को भी अब वैज्ञानिक प्रयासों द्वारा साकार किया जा सकता है। आवश्यकता है संकल्प तथा वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ सुनियोजित प्रयास की जिससे हम मतवाले मौसम को पूरी तरह नियंत्रित नहीं कर सकें तो वर्षा के वितरण को तो संतुलित कर ही सकते हैं।

6. पूर्वानुमान और मानसून की विशेषताएं

विशाल भारत-जैसे दुनिया में बहुत कम देश हैं जिनकी कृषि मौसमी वर्षा पर निर्भर करती है। इसी विशेषता की वजह से भारतीय कृषि व्यवसाय एक अलग ढंग का कार्य है। यहां कृषि उपज तथा विभिन्न प्रकार की फसलों की पैदावार बहुत हद तक मानसूनी वर्षा के परिणाम और उसकी सामयिकता से संबंधित हैं। यह सुविदित तथ्य है कि यहां की जनसंख्या का अधिकांश भाग परंपरागत कृषि कार्य में लगा है। साथ ही तेजी से बढ़ती हुई आबादी के लिए खाद्यान्न उपलब्ध करा पाना एक समस्या तथा राष्ट्रीय चुनौती है। देश की आबादी एक अरब से ऊपर हो गई है। इसके लिए हमें 2000 लाख टन से अधिक खाद्यान्न की जरूरत है। ऐसी स्थिति में आबादी और कृषि उत्पादन में संतुलन बनाए रखने के लिए कृषि-उत्पादन की सालाना विकास दर पांच प्रतिशत से अधिक होनी चाहिए।

मानसूनी जलवायु की कई ऐसी विशेषताएं हैं, जिन्हें समयानुसार किसी क्षेत्र के लिए वरदान कहा जा सकता है। लेकिन यदि समय से वर्षा न हुई तो कृषि के लिए यही वरदान अभिशाप बन जाता है। ऐसी घटना पिछले दशक में वर्ष 1979 में हुई जबकि समयानुसार मानसूनी वर्षा नहीं हुई। फलस्वरूप कृषि उत्पादन प्रभावित हुआ और उत्पादन में पंद्रह से बीस प्रतिशत की कमी आ गई थी। ऐसी स्थिति में केवल खाद्यान्न में ही कमी नहीं होती है, बल्कि राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था प्रभावित होती है। महंगाई बढ़ती है तथा कई सामग्रियों के आयात की विवशता हो जाती है। कई क्षेत्रों में सूखे और अकाल के कारण अनेक प्रकार की सामाजिक और राजनैतिक समस्याएं उत्पन्न होने लगती हैं।

मूलतः कृषि प्रधान देश होने के कारण भारत की आर्थिक गतिविधियां कृषि-उत्पादन से जुड़ी हैं। विकासशील आर्थिक व्यवस्था में प्रति व्यक्ति आय के बढ़ने के साथ ही अच्छे जीवन-यापन की लालसा में खाद्य-सामग्री की

मांग भी बढ़ती जाती है, जिससे कृषि पर उत्तरोत्तर दबाव पड़ता है। स्वतंत्रता के पचास वर्षों बाद कृषि-उत्पादन की बढ़ोतरी की दर तीन प्रतिशत के करीब है, जबकि आर्थिक विश्लेषण तथा अनुमान के आधार पर पांच प्रतिशत की सालाना दर होनी चाहिए। कृषि उपज बढ़ाने के लिए उर्वरकों तथा देशी खाद के इस्तेमाल पर जोर देने की बात भी कही गई है। इस सुझाव से सहमत होते हुए कृषि वैज्ञानिकों ने जल-प्रबंध के महत्व पर भी विचार किया है। ऐसा अनुमान किया गया है कि यथेष्ट मात्रा में उर्वरकों के उपयोग तथा समुचित जल प्रबंधन के द्वारा कृषि-उत्पादन में पंद्रह से बीस प्रतिशत वृद्धि की जा सकती है।

कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी के लिए किए जा रहे अनेक उपायों से अच्छे परिणाम मिलने की संभावना है। लेकिन इस संदर्भ में यह तथ्य भी उजागर है कि जल प्रबंधन, उर्वरकों का उपयोग तथा कृषि कार्य के नित नई तकनीकों के अपनाए जाने के बावजूद भारतीय कृषि की जलवायु पर निर्भरता बनी रहेगी। वैज्ञानिकों के द्वारा किए जा रहे अथक प्रयासों के अच्छे परिणाम मिलते रहे हैं। फिर भी भारतीय कृषि की मानसूनी जल वर्षा पर निर्भरता को समाप्त नहीं किया जा सकता है। हां, पिछले दशकों में भारतीय कृषि की पूर्ण निर्भरता को कम करने के प्रयास में कुछ सफलता मिली है। यह कार्य मौसम विज्ञान के द्वारा जल वर्षा के पूर्वानुमान से संभव हो सका है। इस कार्य के लिए भारत के अलावा एशिया के अन्य देश तथा विश्व संगठन के वैज्ञानिक भी प्रयत्नशील हैं।

मानसून की वर्षा और उसके पूर्वानुमान के लिए भारतीय मौसमविज्ञान विभाग की भूमिका सराहनीय कही जा सकती है। मौसम वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए संपूर्ण भारत को पैंतीस उपमंडलों में विभाजित किया गया है और वहां से प्रति दिन मौसम संबंधी सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं। ऐसे प्रत्येक उपमंडल में जिला स्तर पर कई मौसम वैज्ञानिक केंद्र स्थापित किए गए हैं जिनकी सहायता से क्षेत्रीय तथा उपक्षेत्रीय स्तर पर मौसम में हो रहे दैनिक परिवर्तनों का समुचित आकलन किया जाता रहे।

इस संदर्भ में यह ध्यान देने की बात है कि भारत-जैसे विशाल देश के लिए केवल राष्ट्रीय तथा प्रादेशिक स्तर पर नहीं, बल्कि क्षेत्रीय स्तर पर

मौसम का पूर्वानुमान देना भी अपेक्षित है। लेकिन प्रचलित मौसम पूर्वानुमान पद्धति के अनुसार क्षेत्रीय अथवा स्थानीय रूप में दीर्घावधि अनुमान देना कठिन होता है।

भारत के किसान मौसम-पूर्वानुमान के मामले में सबसे अधिक महत्व वर्षा तथा उसकी मात्रा को देते हैं जबकि मानसूनी प्रकार की जलवायु में वर्षा की सही मात्रा का अनुमान कर पाना कठिन होता है। विशेषकर क्षेत्रीय तथा जिला स्तर पर मानसून के समय वर्षा की मात्रा का अनुमान प्रायः गलत हो जाया करता है। फलस्वरूप किसानों में अवांछित असंतोष फैलने लगता है और मौसम-पूर्वानुमान पद्धति से विश्वास उठने लगता है, जो उचित नहीं है।

मानसूनी जलवायु के अंतर्गत पूर्वानुमान में जल वर्षा की मात्रा बता पाना कठिन है, किंतु उससे भी कठिन कार्य उसके सामयिक वितरण का है। बरसात के मौसम में अपनी मतवाली चाल के लिए मानसूनी पवन सदैव कुख्यात रहा है। विशेषकर धान उपजाने वाले क्षेत्रों में जब जल वर्षा की अधिक जरूरत रही है, तब किसानों पर क्या बीतती है, यह कोई भुक्तभोगी ही समझ सकता है। इससे भी अधिक दुखदायी स्थिति तब उत्पन्न होती है जब मेघ प्रस्फोट यानी 'बादल फटने' (क्लाउड बर्स्ट) की वजह से अचानक अवांछित रूप में भारी वर्षा हो जाती है और खेतों में लगी फसल बरबाद हो जाती है।

भारतीय मौसमविज्ञान विभाग की कार्य पद्धति के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय स्तर पर पूर्वानुमान को दो मुख्य वर्गों मे विभाजित कर प्रचलित किया जाता रहा है। प्रथम दीर्घकालीन तथा द्वितीय – अल्पकालीन या अल्पावधि के पूर्वानुमान। राष्ट्रीय स्तर पर दीर्घावधि अर्थात् एक सप्ताह के पूर्वानुमान को सामान्यतः उचित (साठ से सत्तर प्रतिशत) मान्यता मिलती रही है। किंतु क्षेत्रीय अथवा जिला स्तर पर एक सप्ताह का पूर्वानुमान भी कठिन होता है और यह सदैव संदिग्ध रहता है।

इस दिशा में उचित क्षमता प्राप्त करने के लिए पिछले दो दशकों से अनेक प्रकार के वैज्ञानिक प्रयास किए जाते रहे हैं।

भारतीय कृषि फसलों की स्थिति, कृषि कार्य की परिपाटी और ग्रामीण किसानों की अपेक्षाओं को ध्यान में रखते हुए अल्पावधि पूर्वानुमान तैयार करने तथा सामयिक परीक्षण के लिए अनुसंधान और विकास का विशेष कार्यक्रम चलाया गया है। विदित है कि विश्व में मौसम विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में हो रही प्रगति को देखते हुए अनुसंधान का कार्य भी व्यय साध्य तथा जटिल होता जा रहा है फिर भी भारत में कृषि की प्रमुखता को देखते हुए इसे प्राथमिकता प्रदान की गई है। सन् 1976 में भारतीय कृषि पर राष्ट्रीय आयोग की रिपोर्ट ने भी इसकी आवश्यकता के संबंध में सिफारिश की थी। साथ ही देश में जल वर्षा तथा उसके वितरण की स्थिति के आकलन के लिए बरसात के तीन महीनों में जल वर्षा के आधार पर भारत को पांच वर्षा-अंचलों में विभाजित कर अध्ययन प्रस्तुत किया था।

मानसून का पूर्वानुमान — उदाहरण 1998

पिछले दस वर्षों से भारत में दक्षिण-पश्चिम मानसूनी बरसात के दौरान सामान्य वर्षा हो रही है। वर्ष 1988 में विकसित और परिचालित किए गए 16 प्राचल (पैरामीटर) वाले दीर्घअवधि पूर्वानुमान मॉडल के उपयोग से भारत-मौसमविज्ञान विभाग ने तब से प्रत्येक वर्ष मानसूनी वर्षा की सही भविष्यवाणी की है। समूचे देश के लिए जून से सितंबर तक चार महीनों के दौरान होने वाली मानसून की वर्षा उस समय सामान्य कहलाती है जब यही मात्रा अपनी दीर्घावधि के औसत मान के दस के अंदर रहे जो कि 88 सेमी. हैं। यह परिभाषा मानसूनी वर्षा के साल-दर-साल परिवर्तन की सांख्यिकी प्रवृत्ति पर आधारित है।

भारत-मौसमविज्ञान विभाग के प्रचलित दीर्घावधि पूर्वानुमान मॉडल में 16 क्षेत्रीय और भौगोलिक स्थल-समुद्र और वायुमंडलीय प्राचलों का प्रयोग किया जाता है, जो कि भारत की मानसूनी वर्षा के साथ भौतिक रूप से संबंधित है। मॉडल का प्रत्येक प्राचल एक निश्चित स्थान पर और मानसून से पहले लिए गए परीक्षणों पर आधारित होता है। मॉडल के पूर्वानुमान की त्रुटि लगभग 4 प्रतिशत तक होती है। साथ ही मानसूनी वर्षा के समय होने वाली घटनाओं से भी प्रभावित होती है जिसका पूर्वाभास मई में दीर्घावधि पूर्वानुमान तैयार करने के समय पूरी तरह से नहीं हो पाता है। कुछ

परिस्थितियों में इसके कारण भविष्यवाणी में कुछ अनिश्चितता आ जाती है जो कि 4 प्रतिशत मॉडल त्रुटि से अधिक हो सकती है।

वर्ष 1998 का पूर्वानुमान

भारत-मौसमविज्ञान विभाग के 16 प्राचल वाले मॉडल के दो अलग भाग है। पैरामिट्रिक माडल में 16 स्थल समुद्र-वायुमंडलीय प्राचलों में से अनुकूल और प्रतिकूल संकेतों की संरचना का विश्लेषण किया जाता है और मानसूनी वर्षा के प्रदर्शन का गुणात्मक अनुमान लगाया जाता है।

इस वर्ष 16 माडल प्राचलों में से 9 अनुकूल पाए गए हैं और पैरामिट्रिक मॉडल से संकेत मिलते थे कि वर्ष 1998 में दक्षिण-पश्चिम मानसून की वर्षा सामान्य होने की संभावना है। वर्ष 1998 के लिए भारत मौसम-विज्ञानविभाग का दक्षिण-पश्चिम मानसून के समय की वर्षा का अधिकृत पूर्वानुमान इस प्रकार था —

क) 1998 के दौरान समूचे देश के लिए संपूर्ण दक्षिण-पश्चिम मानसूनी बरसात (जून से सितंबर) में वर्षा के सामान्य रहने की संभावना थी। अतः 1998 का वर्ष लगातार ग्यारहवां सामान्य मानसूनी वर्षा का स्थल हो गया था।

ख) मात्रात्मक रूप में समूचे देश के लिए संपूर्ण दक्षिण-पश्चिम मानसून ऋतु के दौरान दीर्घावधि औसत मान की लगभग 99 प्रतिशत वर्षा होने की संभावना थी। इसकी अनुमानित त्रुटि करीब 4 प्रतिशत रहेगी।

मानसून की विचित्र विशेषताएं

उष्णकटिबंधीय भाग में स्थित भारतीय उपमहाद्वीप में मानसूनी प्रकार की जलवायु है, जिसकी अपनी कुछ विशेषताएं हैं जो इस जलवायु को दूसरे से अलग करती हैं। इनमें कतिपय महत्वपूर्ण विशेषताएं इस प्रकार हैं —

1. मानसून वर्षा का अधिकांश भाग वर्षा के चार महीनों जून से सितंबर

के बीच होता है, जिससे यहां एक अलग प्रकार की ऋतु का सृजन होता है, जिसे वर्षाऋतु कहा जाता है।

2. गर्मी के महीने अर्थात् जून में मानसूनी वर्षा लाने वाले पवन का आगमन एकदम दक्षिण केरल प्रदेश से प्रायः जून की पहली तारीख से होता है। फिर दस दिनों के अंतराल में दक्षिण भारत के पश्चिमी घाट तथा उत्तर-पूर्वी भारत के हिमालयी क्षेत्र में छा जाता है।

3. मानसून का अधिक प्रभाव पश्चिमी घाट तथा पूर्वोत्तर हिमालयी इलाके में होता है जबकि पश्चिमोत्तर भारत, विशेषकर पश्चिम राजस्थान और उत्तरी गुजरात के क्षेत्रों में बहुत न्यून वर्षा होती है।

4. भारत की कुल सालाना जल वर्षा का करीब तीन चौथाई भाग मानसूनी बरसात के तीन-चार महीनों (जून से सितंबर) में प्राप्त हो जाता है। साल के शेष महीने प्रायः शुष्क रहते हैं।

5. मानसून पवन के द्वारा भारतीय उपमहाद्वीप में जल वर्षा वाष्पीभवन प्रक्रिया से होती है, जो भूम्याकारों विशेषकर पर्वत श्रृंखलाओं से प्रभावित होती है। इसीलिए ऐसा माना जाता है कि हिमालय की ऊँची दीवार नहीं होती तो मानसून पवन बिना वर्षा के उत्तर की ओर निकल जाता और संपूर्ण उत्तरी भारत रेगिस्तान बना रहता।

6. प्रत्येक वर्ष जून के महीने में गर्जन-तर्जन के साथ विशाल मेघराशि लेकर मानसून आगमन और पहली वर्षा का एक चमत्कारी और प्रभावोत्पादक दृश्य होता है।

7. मानसूनी वर्षा की समाप्ति अचानक नहीं होकर धीरे-धीरे होती रहती है। कभी सितंबर तो कभी अक्टूबर में दक्षिण-पश्चिम मानसून शिथिल होकर समाप्त होता है।

8. मानसूनी बरसात और मानसूनी पवन की सबसे बड़ी विचित्र विशेषता इसकी वर्षा की मात्रा और क्षेत्रीय आधार पर बहाव दिशा का परिवर्तन है। मानसूनी बरसात के दौरान होने वाली जलवर्षा की मात्रा में प्रतिवर्ष

अंतर आता रहता है। जून-सितंबर के मौसम के दौरान ही भारत के किसी क्षेत्र में सूखा-बाढ़-सूखा का चक्र चलता रहता है।

9. मानसूनी बरसात के पूर्व तथा मध्य में कतिपय वास्तविक कारणों से चक्रवात का सृजन भी होता है। जब जुलाई-अगस्त के बीच 30-40 दिनों में, मानसून का विश्रांतिकाल होता है, तब अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में चक्रवातीय तूफानों के सृजन की स्थिति पैदा हो जाती है।

7. अनुसंधान की दिशा : दीर्घकालीन पूर्वानुमान

आधुनिक युग में मानसून का पूर्वानुमान लगाने के कार्य का आरंभ सर गिलबर्ट वाकर ने किया, जो 1904 से लेकर 1921 तक, भारतीय मौसमविज्ञान विभाग के अध्यक्ष थे। इस पद को ग्रहण करने के लिए वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी कालेज की फेलोशिप छोड़कर आए थे। भारतीय मौसमविज्ञान विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्यरत रहने के दौरान ही, 1920 में, उन्होंने पवन के उस अत्यंत विशाल परिसंचरण चक्र की खोज की थी, जो बाद में 'वाकर परिसंचरण चक्र' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह चक्र अल नीनो की घटना का परोक्ष कारण है।

'विश्व मौसम' पर माला के रूप में प्रकाशित अपने शोध-लेखों में उन्होंने वायुमंडल के व्यापक परिसंचरण में तीन प्रकार के दोलनों की उपस्थिति के प्रमाण प्रस्तुत किए थे। इन दोलनों में, हमारे लिए, कदाचित् सर्वाधिक महत्वपूर्ण है दक्षिणी दोलन। इस दोलन के फलस्वरूप ही जब प्रशांत महासागर के ऊपर वायु दाब उच्च होता है तब हिंद महासागर पर वायु दाब निम्न हो जाता है। इसी प्रकार प्रशांत महासागर पर वायु दाब के निम्न हो जाने पर हिंद महासागर पर दाब बढ़ जाता है। दक्षिण दोलन की खोज के बाद वाकर ने यह निष्कर्ष निकाला कि इस बारे में और अध्ययन करने से उन कारकों की जानकारी प्राप्त हो सकती है जो मानसून की उत्पत्ति से घनिष्ठ रूप से संबंधित हो सकते हैं। कालांतर में वाकर ने ऐसे आठ कारकों की सूची तैयार की जिनसे, उनके अनुसार, मानसून वर्षा का पूर्वानुमान लगाया जा सकता था।

यद्यपि बाद में यह पाया गया कि इनमें से कुछ कारकों और आगामी मानसूनों के बीच कोई स्पष्ट संबंध नहीं है परंतु यह मानना होगा कि गिलबर्ट वाकर ने इस विषय में बहुत विलक्षण कार्य किया था। उन्होंने इस संबंध में वर्षों तक कष्टसाध्य गणनाएं और परिकलन किए थे और वे भी बिना कंप्यूटर के। यदि उनको कंप्यूटर तथा अन्य आधुनिक यंत्रों की सुविधाएं उपलब्ध

होतीं तब निश्चय ही वे इनसे कहीं बेहतर नतीजे प्राप्त करने में सफल होते। वे ऐसे कारकों का अवश्य पता लगा लेते जो प्रबल मानसून के आगमन के सूचक हो सकते हैं।

गिलबर्ट वाकर के बाद भी भारतीय मौसमवैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में अध्ययन जारी रखे। इनके फलस्वरूप अब मानसूनों के बारे में अधिक सही पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। आज कल भारतीय मौसमवैज्ञानिक देश के दक्षिणतम भाग में गर्मी की मानसून पवनों के आगमन और संपूर्ण देश में जून के आरंभ से लेकर मध्य सितंबर तक होने वाली वर्षा की मात्रा का अनुमान लगाने हेतु समाश्रयण समीकरणों (रिग्रेशन इक्वेशन) का उपयोग करते हैं।

मानसून के पूर्वानुमान लगाने के लिए निम्नलिखित सूचकों का उपयोग किया जाता है:

1. जनवरी के महीने में दिल्ली के ऊपर, 300 मिलीबार ऊँचाई पर, पवन के बहने की औसत दिशा।

2. उत्तरी आस्ट्रेलिया के शहर, डारविन, के ऊपर 200 मिलीबार ऊँचाई पर, जनवरी मास में पवन के बहने की दिशा।

3. फरवरी मास में तिरूवअनंतपुरम और चेन्नई के ऊपर, 200 मिलीबार ऊँचाई पर, पवन के बहने की दिशा।

4. पिछले वर्ष, दिसंबर मास में, कोलकाता के ऊपर 200 मिलीबार ऊँचाई पर, पवन का औसत याम्योत्तर घटक (मीन मेरीडिओनल कौंपोनेंट)।

इन सूचकों का उपयोग करके भारत के दक्षिणतम छोर पर सामान्य मानसूनों के आगमन का काफी सही पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। आमतौर से पूर्वानुमान और सामान्य मानसूनों के वास्तविक आगमन में लगभग 8 दिन का अंतर पाया गया है। किसी-किसी वर्ष मानसून का आगमन, असामान्य रूप से देर से होता है।

जून के आरंभ से लेकर सितंबर के मध्य तक पूरे देश में होने वाली वर्षा

की मात्रा का अनुमान लगाने के लिए दो प्रकार के सूचक इस्तेमाल किए जाते हैं – एक प्रकार के सूचक उत्तर-पश्चिम भारत के लिए और दूसरी प्रकार के सूचक भारतीय प्रायःद्वीप के लिए। उत्तर-पश्चिम भारत के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले सूचक हैं:

1. अप्रैल मास में अर्जेन्टाइना के ब्यूनस आयर्स शहर का वायु दाब।
2. अप्रैल मास में लगभग 12° (डिग्री) उत्तर अक्षांश पर 75° पूर्व देशांतर के साथ, 500 मिलीबार ऊंचाई पर, उच्च वायुदाब की औसत स्थिति।
3. सेशल्ज, जकार्ता और डारविन पर, मई मास में औसत भूमध्यरैखिक दाब।
4. अप्रैल के महीने में लुधियाना का औसत ताप।

गर्मी की मानसून से भारतीय प्रायद्वीप पर होने वाली वर्षा की मात्रा का पूर्वानुमान लगाने के लिए निम्नलिखित सूचकों का उपयोग किया जाता है।

1. अप्रैल और मई महीनों में दक्षिण अमेरिकी शहर ब्यूनस आयर्स, और सैंटियागो के वायु दाबों में, सामान्य दाबों की तुलना में घट-बढ।
2. अप्रैल मास में 12° उत्तर अक्षांश और 75° पूर्व देशांतर के साथ 300 मिलीबार पर, वायु का उच्च दाब।
3. जैसलमेर, जयपुर और कोलकाता शहरों के मार्च के महीने के औसत ताप।

उपर्युक्त कारकों से एक बड़े क्षेत्र में जून के आरंभ से सितंबर के मध्य तक होने वाली कुल वर्षा का मोटा पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। परंतु इन कारकों की मदद से यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि इस अवधि में हर महीने कितनी वर्षा होगी। इस कठिनाई को हल करने के लिए भारतीय मौसम विभाग आजकल स्व-समाश्रयण (ऑटो-रिग्रेसिव) माडल का उपयोग करता है। पिछले कुछ वर्षों से विभाग ने सोलह सूचकों के साथ नये समाश्रय समीकरणों का उपयोग आरंभ कर दिया है। इस दिशा में यह दावा किया जाता है कि नए सूचकों की मदद से मानसून वर्षा का और अधिक सही

अनुमान लगाया जा सकता है। परंतु कुछ विशेषज्ञों का मत इससे भिन्न है।

एल नीनो

पिछले कुछ वर्षों से अखबारों में 'एल नीनो' की बहुत चर्चा होती रहती है। अक्सर कहा जाता है कि जिस सर्दी में एल नीनो घटना घटती है उसकी अगली बरसात में भारत और अफ्रीका में बहुत कम वर्षा होती है। वहां सूखा पड़ जाता है। कुछ वैज्ञानिक इन दोनों घटनाओं को - पेरू (दक्षिण अमेरिका) के तट पर सर्दियों में एल नीनो की घटना के होने को और अगली बरसात में भारत में वर्षा के बहुत कम होने को मात्र संयोग मानते हैं तो कुछ इन दोनों घटनाओं में घनिष्ठ संबंध होने पर बल देते हैं। पहले मतावलंबी यह कहते हैं कि पिछले 110 वर्षों के दौरान (1875 से 1985 तक), भारत में 43 बार वर्षा सामान्य से कहीं कम हुई थी, परंतु इन 43 वर्षों में एवं केवल 19 बार ही एल नीनो की घटना घटी थी। साथ ही इन 110 वर्षों के दौरान 6 बार ऐसा भी हुआ कि जब एल नीनो आया पर अगले वर्ष भारत में वर्षा सामान्य मात्रा में ही हुई। वर्ष 1997-98 में भी ऐसा ही हुआ था। दिसंबर 1997 में एल नीनो आया था पर 1998 की बरसात में, भारत में वर्षा सामान्य मात्रा में ही हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में होने वाली वर्षा पर एल नीनो के अतिरिक्त अन्य प्राकृतिक घटनाओं के भी प्रभाव पड़ते हैं।

परंतु एल नीनो स्वयं में एक रोमांचक, बहुचर्चित घटना है जिसमें पिछले कुछ वर्षों से, जनसाधारण भी गहन रुचि लेने लगे हैं। अतएव उसका तथा उसकी 'सहोदरा'-'ला निन्या' का वर्णन कुछ विस्तार से करना श्रेयस्कर होगा।

वर्ष 1972 के अंत में विश्व के विभिन्न भागों में होने वाली अप्रत्याशित और भीषण घटनाओं ने मौसम वैज्ञानिकों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। इन प्राकृतिक घटनाओं ने उन्हें यह सोचने के लिए मजबूर किया कि 'क्या एक-दूसरे से हजारों किलोमीटर दूरी पर घटने वाली इन घटनाओं में आपस में कोई संबंध है?' उस वर्ष हमारे देश में मानसून कमजोर था और अफ्रीका के साहेल क्षेत्र में भी बहुत कम वर्षा हुई थी। साथ ही कुछ महीने पूर्व, दिसंबर के महीने में दक्षिण अमेरिका के उत्तर-पश्चिमी तट पेरू देश के

तट के निकट प्रशांत महासागर में एकाएक कोष्ण जल की एक धारा आ गई थी। जिस प्रकार गर्मी की मानसून से वर्षा न होने या अत्यधिक कम होने से हमारे देश में अकाल की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार सर्दी के दिनों में पेरू के तट के निकट प्रशांत महासागर में कोष्ण जल के आ जाने से भी मछलियों की बड़ी मात्रा में मर जाने अथवा किसी दूरस्थ ठंडे क्षेत्र में चले जाने से पेरू में भुखमरी की हालत पैदा हो जाती है क्योंकि पेरू की आर्थिक व्यवस्था बहुत हद तक मत्स्य उद्योग पर ही आश्रित है।

हर चौथे-पांचवें वर्ष भारत में मानसून कमजोर हो जाता है। उसी प्रकार हर पांच-दस वर्ष बाद पेरू के तटीय सागर में कोष्ण जल की धारा आ जाती है। यद्यपि ये घटनाएं पिछले हजारों वर्षों से निरंतर घट रही हैं परंतु 1972 में पहली बार मौसम वैज्ञानिकों का ध्यान इन दोनों घटनाओं के बीच कोई संबंध होने की संभावना व्यक्त करता है।

सारांश संदर्भ वर्ष 1996 में भारत में वर्षा सामान्य मात्रा में ही हुई। वर्ष 1997-98 में भी ऐसा ही हुआ था। दिसंबर 1997 में एल नीनो आया था पर 1998 की बरसात में, भारत में वर्षा सामान्य मात्रा में ही हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में होने वाली वर्षा पर एल नीनो के अतिरिक्त अन्य प्राकृतिक घटनाओं के भी प्रभाव पड़ते हैं।

मौसम का पूर्वानुमान — एक दशक वास्ते

मौसम का रुख कब अचानक बदल जाएगा और पूरा का पूरा देश सूखे या बाढ़ से तबाह हो जाएगा अथवा भूकंप या चक्रवात के व्यूह में फंसकर चकनाचूर होने लगेगा, इसकी जानकारी किसी को नहीं रहती है, यहां तक कि आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित वेधशालाओं और शोधशालाओं में बैठ कर प्रकृति और मौसम की रहस्यमय दुनिया में लगातार निगहबानी कर रहे मौसम वैज्ञानिक भी चकमा खा जाते हैं। मौसम के बदलते मिजाज और प्राकृतिक उतार-चढ़ाव के संबंध में पहले ही जान लेना काफी मुश्किल और आश्चर्यजनक काम है। समय के गर्भ में कौन-कौन सी रहस्यमय घटनाएं छिपी होंगी, पता ही नहीं चलता है। देश-दुनियां में स्थापित मौसम पूर्वानुमान केंद्रों और अभी तक विकसित विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से कुछ समय आगे

संभावित घटनाओं की ही जानकारी मिल पाती है और कभी-कभार वह भी मिथ्या साबित होती है, किंतु विश्व समुदाय इस बात से काफी आशान्वित है कि आने वाले समय में एक दशक आगे का मौसम भी हमारी जानकारी में रहेगा।

मौसम के तुनकमिजाज तेवरों का निशाना प्रायः हरेक देश होता रहा है। आज दुनिया का प्रत्येक देश मौसम के गर्भ में झांकने की कोशिश में जुटा है और इसे एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या के रूप में देखा जाता है। हालांकि, पिछले कुछ वर्षों में एशियाई देशों के लोग प्राकृतिक आपदाओं के सीधे निशाने पर रहे हैं। 1995 में महाराष्ट्र के लातूर जिले में विनाशकारी भूकंप आया। इसकी तस्वीर दिलों से गायब भी नहीं हुई थी कि उत्तर प्रदेश के पहाड़ी इलाकों में सैकड़ों लोग भूकंप के झटकों में जान से हाथ धो बैठे। इसके पश्चात गत वर्ष उड़ीसा में आए भीषण चक्रवातीय तूफान और फिर इस साल सूखे तथा अकाल की विभीषिका के बारे में तो कुछ बताने की जरूरत ही नहीं महसूस होती है। इधर गुजरात में आए भूकंप ने तथा भूवैज्ञानिकों के इस अनुमान ने कि उत्तरी भारत में दिल्ली सहित एक बड़े इलाके में जोरदार भूकंप आने की संभावना है, लोगों को भयभीत कर दिया है।

जापान में भूकंप इतने अधिक आते हैं कि उसे भूकंपों का देश ही कहा जाता है। एक प्रचलित जापानी लोक कथा के अनुसार पृथ्वी एक विशाल मकड़े पर स्थित है। यह मकड़ा जब टांगे चलाता है तो भूकंप की-सी स्थितियां पैदा हो जाती हैं। इसी तरह भारतीय लोक-कथाएं ऐसी मान्यता प्रदान करती हैं कि पृथ्वी शेषनाग के फन पर टिकी है और इसके फन हिलाने से भूकंप आते हैं। कुछ इसी तरह की मान्यताएं अन्य प्राकृतिक आपदाओं के संबंध में भी प्रचलित हैं।

अब अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक दल को मिली सफलता आशा की किरण लेकर आई है। अभी तक चली आ रही इस विचारधारा को, कि प्राकृतिक घटनाएं एवं मौसम पूरी तरह से अज्ञात और अव्यवस्थित चीजें हैं और इनका कोई निश्चित तौर तरीका या रास्ता नहीं होता, तोड़ते हुए वैज्ञानिकों ने यह कहा है कि मौसम का भी एक निश्चित और नियमित चलन होता है। यह

अंतर्राष्ट्रीय शोध कार्यक्रम लगभग तीन वर्ष पूर्व पेरिस में प्रारंभ किया गया था। उस समय इसमें 60 देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए। 'क्लाइमेट वैरिएशन' यानी 'क्लाइवर' नामक इस शोध कार्यक्रम में लगे वैज्ञानिकों को विश्वास है कि शीघ्र ही इस मिशन में कामयाबी मिल जाएगी और इसके उपरांत दस वर्ष आगे तक मौसम की स्थिति क्या रहेगी, यह बताना कठिन नहीं होगा।

कुछ वर्ष पहले यूनेस्को मुख्यालय में हुई वैज्ञानिकों की बैठक में इस मान्यता को खुलकर स्वीकार किया गया कि मौसम की दशाओं का भी एक निश्चित पैटर्न होता है। जैसा कि हम जानते हैं, मौसम के परिवर्तन का जनक महासागर है। यदि समुद्र में होने वाली हलचल का पूर्वानुमान लगाया जा सके तो मौसम की भविष्यवाणी करना कठिन नहीं होगा। यही सोचकर अब 'क्लाइवर' के शोधार्थियों ने मानसून, और समुद्री प्रोत्थानों की आवृत्ति, क्षमता तथा तीव्रता पर नजर गड़ा रखी हैं। इसके सहारे वे यह जानने का प्रयास कर रहे हैं कि सूखा, बारिश, भूकंप और उष्णकटिबंधीय तूफानों के क्या कारण हैं ?

इस मिशन में उन्हें काफी हद तक सफलता मिल रही है। वे जानते हैं कि समुद्री ताप व समुद्री धाराओं में उतार-चढ़ाव वायुमंडल की तुलना में काफी धीरे-धीरे होता है, किंतु ऊष्मा एवं जलवायु के आदान-प्रदान से यह सब पानी में भी उसी तरह है जैसा हवा में। वैज्ञानिकों ने समुद्री निरीक्षण नौकाओं को जब प्रशांत महासागर में छोड़ा तो नौकाओं ने समुद्री सतह के नीचे कुछ अति गर्म स्थानों का पता लगाया। कंप्यूटर मॉडल इसे एल नीनो की पूर्व सूचना ही मान रहे हैं। इन परिणामों से शोधकर्ताओं में नई आशा एवं विश्वास का संचार हुआ है। इसी तकनीक के सहारे वे अब उत्तरी अटलांटिक दोलन-जैसी अन्य जलवायु प्रावस्थाओं को भी जानने का प्रयास कर रहे हैं। ज्ञात हो चुका हैं कि उत्तरी अटलांटिक दोलन की उत्पत्ति उत्तरी अटलांटिक पर दबाव से होती है। यह सूखा, वर्षा, बाढ़ तथा पश्चिमी यूरोप में होने वाले अधिकांश जलवायु परिवर्तनों के लिए जिम्मेदार है।

फिलहाल 'क्लाइवर' का शोध-समूह इस नतीजे पर पहुंचा है कि यह प्रोत्थान सप्ताह-दर-सप्ताह बदलता रहता है और इसके दीर्घकालीन पैटर्न

होते हैं। वैज्ञानिकों को विश्वास है कि समुद्री धाराओं से इस पैटर्न का पता लगा लिया जाएगा। 'क्लाइवर' के योजनाकार सिएटल विश्वविद्यालय के समुद्र-वैज्ञानिक एंड साराचिक का कहना है, 'अब हम भविष्य को दूर तक देख सकते हैं।' कल्पना कीजिए उस समय की जब टेलिविजन और रेडियो स्टेशनों से 'आज का मौसम' की जगह 'पूरे दस साल बाद का मौसम' बताया जाएगा।

8. कृत्रिम वर्षा के उपाय तथा संभावनाएं

उपलब्ध परिस्थितियों में कृत्रिम वर्षा का प्रयास तभी सफल हो सकता है यदि दो शर्तें पूरी हों। एक तो बादल में अतिशीतित बूंदों की पर्याप्त मात्रा होनी चाहिए और दूसरे उनमें कुछ हिम-क्रिस्टल भी जरूर होने चाहिए। ये हिम क्रिस्टल शृंखला अभिक्रिया को शुरू करते हैं। आरंभ में कृत्रिम वर्षा के जो प्रयोग किए गए थे, उनमें वायुयानों द्वारा ठोस कार्बन डाइआक्साइड (शुष्क हिम 'ड्राइ-आइस') जैसे अत्यंत ठंढे पदार्थ की गोलियां अतिशीतित बादलों में बिखेर देते थे। ये गोलियां 'बीज' की तरह कार्य करती थी। इसके पहले 1946 में अमेरिका के वैज्ञानिक वी.जे. शेफर ने दिखाया था कि अतिशीतित कुहरे से भरे पात्र में ठोस कार्बन-आक्साइड का एक छोटा-सा कण डालने पर करोड़ों की संख्या में छोटे-छोटे हिम-क्रिस्टल बनने लगते हैं। शेफर के इस प्रयोग की अमरीका और आस्ट्रेलिया के मैदानों में जांच की गई। ऐसा करने के लिए वायुयान द्वारा कई पौंड शुष्क हिम की गोलियों के 'बीज' उपयुक्त बादलों पर गिराए गए। इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि इस प्रकार की विधि प्रायः प्रभावी होती है। इसके अतिरिक्त ऐसा प्रतीत होता है कि इस विधि द्वारा अतिशीतित स्तरी और कपासी मेघों को पर्याप्त मात्रा में हिम-मेघों में बदला जा सकता है। इस बात का भी प्रमाण है कि कुछ प्रयोगों में पानी या बर्फ का वर्षण जमीन तक पहुंचा था।

फसलों के लिए पानी का संग्रह करने के लिए वायुयान द्वारा शुष्क हिम गिराकर वर्षा करना कुछ हद तक ही उपयोगी हो सकता है। यह विधि बहुत खर्चीली है और छोटे क्षेत्रों पर प्रयुक्त की जा सकती है। 1946 में अमरीका के भौतिक विज्ञानी वानेगट ने एक महत्वपूर्ण खोज की। इसके खोज के अनुसार –50 डिग्री सेल्सियस से कम ताप पर सिल्वर आयोडाइड के सूक्ष्म कणों का उपयोग हिम बनाने वाले केंद्रकों के रूप में हो सकता है। इसका कारण यह है कि सिल्वर आयोडाइड के क्रिस्टलों की संरचना हिम-क्रिस्टलों की संरचना के बहुत समान होती है। वानेगट की खोज के बाद यह

4—10 M of HRD/ND/04

मालूम हुआ कि 40 डिग्री से. से अधिक ताप पर (इस ताप पर पानी बिना किसी उद्दीपन के ही जम जाता है) अन्य पदार्थ विशेषतः मृत्तिका (क्ले) हिम बनाने वाले नाभिकों की भांति कार्य करती है। परंतु इनमें से कोई भी पदार्थ सिल्वर आयोडाइड-जैसा प्रभावशाली नहीं होता।

वर्षा कराने की वानेगट विधि में प्रयुक्त सिल्वर आयोडाइड के कण ऊर्ध्वपातन से सरलतापूर्वक पैदा किए जा सकते हैं, उदाहरणार्थ, इस रसायन के एसीटोन विलयन को तप्त ज्वाला में डालकर अथवा सिल्वर आयोडाइड से संसेचित कोक की अंगीठी में जलाकर असंख्य कण उत्पन्न किए जा सकते हैं। दूसरी विधि अपेक्षाकृत अधिक सरल है। अनुकूल परिस्थितियों में सिल्वर आयोडाइड का धुआं विसृत होकर जमीन से ऊपर की तरफ, बादल के अतिशीतित भागों तक पहुंचकर बरजेरॉन प्रक्रम को शुरू कर सकता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के अनुत्सुक बादलों को वर्षा में बदलने की यह एक आदर्श विधि है। सिल्वर आयोडाइड वैसे महंगा नहीं होता और सिद्धांततः इसकी अपेक्षाकृत थोड़ी मात्रा ही आवश्यक होती है। जमीन से बादलों का 'बीजन' करने की क्रिया भी बहुत सरल है। ब्लो-लैंप या अंगीठी की तरह के जनित्रों को लक्षित क्षेत्र के ऊर्ध्वगामी पवन में कई किलोमीटर तक एक पंक्ति के रूप में रखते हैं। इनमें से सिल्वर आयोडाइड को कई घंटों तक निकलने देते हैं। इस काम में बहुत कुशलता की आवश्यकता नहीं होती और खर्च भी अधिक नहीं होता। इस प्रकार वायुयान द्वारा बीजन करने की आर्थिक कठिनाई समाप्त हो जाती है।

मौसमवैज्ञानिक, वर्षा करने के लिए इस विधि की क्षमता का अभी वैज्ञानिक दृष्टि से अनुसंधान ही नहीं कर पाए थे कि उससे बहुत पहले ही सरल होने के कारण इसका व्यापारिक दृष्टि से प्रयोग होने लगा। इस विधि द्वारा वर्षण करने के लिए कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सर्वप्रथम यह निश्चित नहीं है कि सिल्वर आयोडाइड के कण हमेशा ही बादल के अतिशीतित स्तरों में पहुंच जाते हैं, क्योंकि ये अतिशीतित स्तर जमीन से प्रायः कई सौ किलोमीटर ऊपर होते हैं। तलीय हवा की विक्षुब्धता

के कारण वायुमंडल में कुछ किलोमीटर की ऊँचाई तक धुआं ऊपर की तरफ काफी तेजी से विसरित होता है। परंतु अधिक ऊँचाई पर यह क्रिया काफी धीरे-धीरे हो जाती है और ताप वितरण अनुकूल होने पर यह रुक भी सकती है। दूसरी कठिनाई यह है कि सूर्य का प्रकाश पड़ने पर सिल्वर आयोडाइड खराब हो जाता है। लगभग एक घंटे तक खुला रहने पर और अपेक्षाकृत उच्च ताप पर इसकी केंद्रक बनाने की क्षमता समाप्त हो जाती है।

अब वर्षा उत्पन्न करने या उसे बढ़ाने के प्रयास करते समय एक मुख्य कठिनाई यह आती है कि परीक्षणों के परिणामों का मूल्यांकन कैसे किया जाए? मौसमविज्ञान में जितनी भी राशियां मापी जाती हैं उनमें ऐसा भी होता है कि किसी स्थान पर एक साल तक वर्षा होती है परंतु दूसरा साल सूखा रहता है और यह क्रम लगातार कई वर्षों तक चलता रहता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक स्थान पर तो भारी वर्षा होती है जबकि उससे कुछ ही दूर दूसरे स्थान पर वर्षा या तो बहुत कम होती है, अथवा होती ही नहीं। बीजन करने के बाद यदि वर्षा हुई तो हम समझते हैं कि प्रयोग सफल रहा है। लेकिन क्या प्रमाण है कि इसके बिना, केवल प्राकृतिक रूप से, अर्थात् मानवीय हस्तक्षेप के बिना वर्षा हुई, यह समस्या हमेशा ही उठ खड़ी होती है।

प्रारंभ में कुछ व्यापारी आपरेटरों ने वर्षा में कई सौ प्रतिशत तक की वृद्धि का दावा किया। आजकल ऐसे कथनों पर सामान्यतः विश्वास नहीं किया जाता, और ऐसा समझा जाता है कि यह वृद्धि 10 या 20 प्रतिशत से अधिक नहीं थी, यद्यपि इसमें भी बहुत संदेह है। अत्यधिक परिवर्तनशील घटक में ऐसी मामूली घट-बढ़ का पता लगाने के लिए आवश्यक है कि अनेक सुनियंत्रित प्रयोग कर उनका ठीक-ठीक सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाए। अधिकतर मौसमवैज्ञानिकों की यह राय है कि कृत्रिम रूप से वर्षा कराने के लिए बहुत धन खर्च करने पर भी इस बात का कोई संतोषजनक प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ है कि जमीन से छोड़े गए सिल्वर आयोडाइड का प्रयोग करके विस्तृत क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा निश्चित रूप से बढ़ाई जा सकती है।

लेकिन आशा की एक किरण दिखाई देती है। इस बात का प्रमाण है कि अगर सिल्वर आयोडाइड के पैदा करने वाले साधनों को ऊँचे पहाड़ों पर उस तरफ रखा जाए जिधर हवा चल रही हो तो वर्षा की मात्रा कुछ हद तक बढ़ जाती है। इन परिस्थितियों में बने पार्वतिक बादल प्रायः अतिशीतित होते हैं और पहाड़ों पर ऊपर की तरफ उठने वाली हवा सिल्वर आयोडाइड के कणों की पर्याप्त मात्रा को तेजी से बादलों में मिला देती है। जमीन पर रखे जनित्रों द्वारा सफलतापूर्वक बीजन होने के लिए यह सबसे अधिक अनुकूल परिस्थिति है। भारत में हिमालयी क्षेत्र तथा पश्चिमी घाट के इलाके इस प्रयास के लिए उपयुक्त कहे जा सकते हैं। फिर भी, यह नहीं कहा जा सकता कि लंबे समय तक लगातार होने वाली अनावृष्टि को समाप्त करने की कोई विधि नहीं है। किंतु बीजन सफलतापूर्वक तभी संभव होता है जबकि परिस्थितियां निश्चित रूप से प्राकृतिक वर्षा के अनुकूल हों तथा आकाश में बादल तैरते रहें।

केंद्रकों की उत्पत्ति के बारे में काफी अनुसंधान हो रहा है और लंदन विश्वविद्यालय के इंपीरियल कालेज में तो यह कार्य विशेष रूप से हो रहा है। इसके फलस्वरूप कुछ अप्रत्याशित और आकर्षक परिणाम भी प्राप्त हो चुके हैं। उदाहरणार्थ, जिन धूलि कणों के चारों ओर एक बार बर्फ बन चुकी हो, उनमें बाद में परीक्षणों में हिमायन (फ्रीजिंग) शुरू करने की अधिक क्षमता होती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वे उच्च ताप पर भी नाभिकीय कार्य कर सकते हैं। इस संबंध में एक सुझाव यह दिया गया है कि इस प्रकार का प्रभाव संभवतः बर्फ के उन सूक्ष्म टुकड़ों द्वारा होता है जो दरारों में फंसे रहते हैं। पहली बार बर्फ के ये सूक्ष्म टुकड़े गलने से बच जाते हैं और फिर दूसरे परीक्षण में हिमायन बढ़ाने के लिए समर्थ हो जाते हैं। संघनन या हिमायन के लिए वायुमंडल के केंद्रकों की उत्पत्ति संबंधी कोई वास्तविक भौतिक सिद्धांत मौसमविज्ञान के साथ क्रिस्टल-विज्ञान और भौतिक-रसायन-जैसे दूसरे विज्ञानों पर आधारित होगा।

भारत में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद के सहयोग से कुछ जल- विज्ञान विशेषज्ञों ने कृत्रिम वर्षा के सफल प्रयोग किए हैं। ऐसे

प्रयास उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान के सूखा प्रभावित क्षेत्रों में स्थानीय रूप से काफी सफल रहे थे। किंतु अधिक व्यय के कारण सरकारी विभाग इस ओर वांछित रूप में उन्मुख नहीं हो सके हैं।

9. सागर का जलवायु पर प्रभाव

यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि पानी की ऊष्माधारिता अपेक्षाकृत बहुत अधिक है। इसका अर्थ हुआ कि पानी और किसी अन्य वस्तु, उदाहरणार्थ रेल, पत्थर आदि की समान मात्राएं लेकर उन्हें एक समान ताप तक गरम करें तो पानी को अधिक उष्मा की जरूरत होगी। इसका यह अर्थ भी हुआ कि पानी अपेक्षाकृत अधिक 'ऊष्मा' धारण कर सकता है। इसीलिए सागर की बड़ी-बड़ी जलधाराएं बहुत बड़ी मात्रा में ऊष्मा का विनिमय करती हैं। वे ऊष्मा की विशाल मात्राओं को दूर-दूर तक ले जाती हैं। उदाहरण के तौर पर गल्फ स्ट्रीम को ही लीजिए। यह उष्णकटिबंध से ऊष्मा की विशाल मात्रा ब्रिटेन और उत्तरी सागर तक ले जाती है। इसीलिए सरदी के दिनों में उत्तरी सागर नहीं जमता और ब्रिटेन की जलवायु भी काफी सुखद रही आती है, जबकि उन्हीं अक्षांशों में स्थित बाल्टिक सागर जम जाता है और जर्मनी में कड़ाके की ठंड पड़ती है।

पानी की उच्च ऊष्माधारिता के कारण ही वह थल की अपेक्षा देर में गरम और देर में ठंडा होता है। इस घटना में पानी का एक और गुण भी सहायक होता है। पानी पर पड़ने वाली सौर ऊर्जा उसकी ऊपर की सतह में सांद्रित न रहकर काफी दूर तक वितरित हो जाती है। इसके विपरीत थल पर पड़ने वाली सौर ऊर्जा उसकी ऊपरी कुछ सेंमी. मोटी तह में ही रह जाती है।

पानी के इन गुणों के फलस्वरूप जल और थल समीरों का जन्म होता है तथा तट के निकट के स्थानों के रात और दिन के तापों में अधिक अंतर नहीं हो पाता। दिन के समय थल सागर की अपेक्षा अधिक गरम हो जाता है। उसके ऊपर की वायु भी जल्दी गरम होकर ऊपर उठने लगती है। इसे

वहां वायु का दबाव कम हो जाता है। उस समय सागर के ताप के अपेक्षाकृत कम होने के कारण वहां वायु का दबाव अपेक्षाकृत अधिक होता है और वायु के अधिक दबाव वाले क्षेत्र से कम दबाव वाले क्षेत्र की ओर बहने के गुण के फलस्वरूप वह सागर से थल की ओर बहने लगती है। वह ठंडे जल पर से आती है, इसलिए उसका ताप भी कम होता है। इससे थल का ताप भी कम होने लगता है। यह जल समीर होती है।

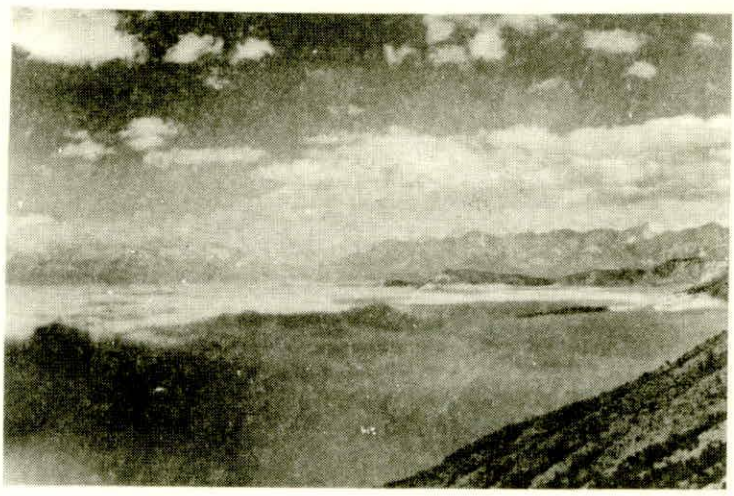

भारी वर्षा के बाद रिक्त हुए बादल

रात में क्रिया विपरीत दिशा में होती है। उस समय सागर की अपेक्षा थल अधिक ठंडा होता है। इसलिए वायु थल से सागर की ओर बहती है। इससे थल का ताप इतना कम नहीं हो पाता, जितना अन्यथा हो जाता है।

गरमी और ठंड की ऋतुओं में भी ये क्रियाएं होती हैं। इसीलिए तट के निकट स्थित शहरों की जलवायु रात और दिन में ही नहीं, गरमी और सरदी में भी सम रहती है। किसी भी स्थान की जलवायु का अनुमान लगाने से पहले सागर से उसकी दूरी को अवश्य ध्यान में रखा जाता है।

10. बदलता मौसम — रंग-बिरंगा

कथन है-'संसार परिवर्तनशील है'-यही बात मौसम के लिए भी सत्य है। कहीं भी किसी देश में मौसम सदैव एक-सा नहीं रहता है। अलग-अलग तरह की जलवायु में अलग प्रकार की विशेषताएं होती हैं, उसी प्रकार उनके मौसम भी होते हैं। प्राकृतिक वातावरण में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव केवल मानव तथा जीव-जंतुओं पर ही नहीं, वनस्पतियों तथा निर्जीव पदार्थों पर भी देखा जा सकता है। ऐसे प्रभावों का भावनात्मक चित्रण विश्व के कई महान साहित्यकारों ने किया है। हमारे देश में भी महाकवि कालिदास का काव्य 'ऋतुसंहार' इसका उत्तम उदाहरण है। इसके अलावा भारत के प्रायः हर भाषा में बारहमासा नाम से ऋतुओं की विशेषताएं तथा बदलाव के गीत गाए जाते रहें हैं।

जलवायु विज्ञान के अनुसार तापमान, आर्द्रता, वर्षा, वायुभार आदि के आधार पर पूरे साल को चार मुख्य मौसमों में विभाजित कर अध्ययन किया जाता रहा है। भारतीय जलवायु में मूलतः चार मौसम इस प्रकार से है-

ग्रीष्म – अधिक तापमान का गर्म मौसम	मार्च से मई
वर्षा – मानसूनी बरसात के महीने	जून से सितंबर
शरद – कम गर्मी और ठंड की शुरुआत वर्षा की समाप्ति	अक्टूबर से नवंबर
शिशिर – शीतल हवाएं	
ठंडक का मौसम – उत्तर पूर्वी मानसून	दिसंबर से फरवरी

चार मौसमों के होते हुए भी भारत में अपनी जलवायु की अलग विशेषताओं के कारण परंपरागत रूप में पांच नहीं, बल्कि छह ऋतुओं की परंपरा अपना रखी है। इसका मूल कारण यहां मानसूनी प्रकार की जलवायु

का होना है, जिसके द्वारा मानसूनी बरसात के समय में तीन-चार महीनों के दौरान यहां के कई हिस्सों में घनघोर बरसात होती है।

भारत में सबसे तेज और अधिक ताप वाला मौसम है – ग्रीष्म। अप्रैल-मई के महीने में सूरज की तेज धूप पूरे दिन रहती है। इससे भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी-पूर्वी भागों के क्षेत्र तप्त हो उठते हैं और धरती के पास वाली हवा गर्म होकर ऊपर उठने लगती है, फलस्वरूप यहां का दबाव कम हो जाता है।

इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्ध में मई-जून सर्दियों के महीने होते हैं। वहां हवा अपेक्षाकृत ठंडी और घनी होती है, फलस्वरूप इस क्षेत्र में वायुभार अधिक हो जाता है जिसकी वजह से यहां की हवा का बहाव उत्तर की ओर का हो जाता है।

भारत भूमि में तेज गर्मी की वजह से जीव-जंतु व्याकुल हो जाते हैं। ताल-तलैये सूख जाते हैं – सरिताओं तथा कूपों में भी जल की मात्रा क्षीण होने लगती हैं। यह प्रकृति की विचित्र लीला है कि बरसात के मौसम में जलवर्षा देने के पहले धरती के जल को तेज धूप से सुखा डालती है।

इसके बाद आता है जून का महीना, जिसे भारतीय परंपरा के अनुसार आषाढ़ कहते हैं। जून के पहले सप्ताह में धुर दक्षिण के इलाके – केरल प्रदेश से आगमन होता है – मेघदूत मानसून का। ताप हरने वाली अमृत के समान जलवर्षा देने वाली यह हवा पश्चिमी घाट के सहारे उत्तर की ओर गतिमान होती जाती है। प्रत्येक वर्ष सूखी धरती पर किसान और बहुसंख्यक भारतवासी इसकी प्रतीक्षा बहुत आतुरता के साथ करते हैं। मानसून के आगमन के साथ ही भारत में वर्षा ऋतु का आरंभ होता है।

वर्षा ऋतु में मानसून की दूसरी शाखा बंगाल की खाड़ी से आगे पहुंचकर तेजी के साथ उत्तर-पूर्वी भारत और फिर गंगा के मैदानी इलाकों से सिंधु घाटी तक पहुंच जाती है। इस प्रकार जुलाई तक पश्चिमोत्तर भारत के कुछ हिस्सों को छोड़कर मानसून संपूर्ण भारत भूमि को जलवर्षा से सराबोर कर डालता है। किंतु जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका

है मानसूनी हवाओं की चाल मतवाली होती है। इसी संदर्भ में प्रसिद्ध मौसम वैज्ञानिक डा. राम का कथन उल्लेखनीय है –

..... अक्सर वर्षा रानी एक छलांग लगाती है, रुकती है और फिर अगली छलांग में आगे बढ़ जाती है। लेकिन कभी-कभी यह बड़े-बड़े क्षेत्रों को भी फलांग जाती है।

भूमि का चप्पा-चप्पा हरियाली से हरा हो जाता है। यहां तक चट्टानें भी काई से हरी हो जाती हैं। ताल-तलैया भर जाते हैं। मच्छरों की संख्या दुगनी से चौगुनी हो जाती है। कोयल की कूक गूंजने लगती है, मेंढ़क टर्राते हैं, मोर नाच उठते हैं। विरही प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे से मिलने के लिए आतुर हो उठते हैं और इच्छाएं प्रबल हो जाती हैं।'

प्रचलित कहावत के अनुसार हर अच्छी स्थिति भी एक बार समाप्त होती है। इसी प्रकार मानसूनी बरसात की समाप्ति विशेषकर उत्तरी भारत में अक्टूबर में होती है। दक्षिण-पश्चिम मानसून शिथिल होकर समाप्त होता है। इस समयावधि में मानसूनी वातावरण में अनेक प्रकार के बदलाव आने लगते हैं। तभी बंगाल की खाड़ी में उष्णकटिबंधीय चक्रवातों का सृजन होने लगता है। ये चक्रवात कभी-कभी भयंकर समुद्री तूफान का रूप धारण कर तटीय प्रदेशों पर भयंकर मार करते हैं। इनसे तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश और बंगाल के तटीय क्षेत्रों में तेज हवा चलती है और भारी वर्षा होती है।

बरसात के बाद गर्मी कम हो जाती है, रात में तापमान कम होने लगता है। यही शरद के सुहावने मौसम का संकेत है। लेकिन दक्षिण भारत के कई इलाकों में पीछे हटते हुए मानसून की वर्षा होती रहती है जो कि धान की दूसरी फसल उपजाने के लिए काफी लाभदायक होती है। शरद ऋतु भारत में उत्सव और त्योहारों का मौसम माना जाता है। विशेषकर भारत के ग्रामीण इलाकों में कई प्रकार के उत्सवों का आयोजन किया जाता है।

नवंबर के आगमन के साथ ही ठंड का प्रभाव बढ़ने लगता है। दिन में निर्मल आकाश तथा रात में तापमान कम होने से उत्तरी भारत के पर्वतीय

क्षेत्रों में बर्फानी हवाएं बहती हैं और हिमपात भी होता है। किंतु दक्षिण भारत तथा अन्य मैदानी इलाकों में मौसम सुहावना बना रहता है।

दिसंबर के साथ हेमंत की समाप्ति के साथ शीतलता बढ़ती जाती है और शिशिर ऋतु का आरंभ होता है। उत्तरी भारत के ऊँचे स्थान बर्फ से ढंक जाते हैं। ऐसे क्षेत्रों में वनों में पतझड़ की स्थिति आ जाती है। मैदानी इलाकों में रात अधिक ठंडी हो जाती है और सुबह में ओस या पाला पड़ा रहता है। पर्वतीय क्षेत्रों या नदी घाटियों में कुहरा या धुंध का प्रभाव होने लगता है। दिन छोटे और राते लंबी होती है।

भारत में फरवरी-मार्च का महीना मौसमी बहार का माना जाता है। ठंडक समाप्त होने लगती है। वनस्पतियों में नए पत्र-पुष्प आने लगते हैं। वसंत ऋतु को भारत में उमंग-उत्साह और त्योहार का समय माना जाता है। इस समय संपूर्ण भारत में कई दिनों तक अनेक प्रकार के धार्मिक त्योहार मनाए जाते हैं। रबी की फसल तैयार हो जाती है और अच्छी उपज को पाकर किसान खुशी से झूम उठते हैं।

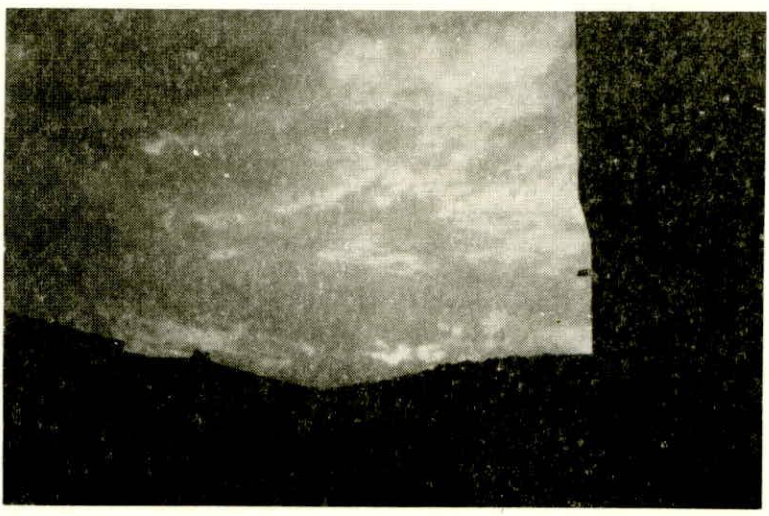

मानसून जोर पर ''सावनी समां''

11. भारत में जल स्थिति – वर्षा-जल का उपयोग

वर्षा जल का उपयोग

पहले विश्व की जनसंख्या कम थी और सभी लोगों की आवश्यकता पूरी करने के लिए पर्याप्त मात्रा में शुद्ध जल उपलब्ध था। लेकिन तब भी पानी का महत्व कम नहीं था। कृषि भूमि को सिंचाई सुविधा देने के लिए लड़ाइयां होती थी। अब विश्व की निरंतर बढ़ती जनसंख्या तथा बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण की वजह से पानी की कमी महसूस की जा रही है। कुछ विशेषज्ञों का तो यहां तक कहना है कि अगर समय रहते पानी के संग्रह, उचित उपयोग, पुनः उपयोग और बेहतर इस्तेमाल के कारगर उपाय नहीं किए गए तो अगला महायुद्ध पानी के लिए हो सकता है।

हमारे देश के सभी भागों में समान रूप से वर्षा नहीं होती। दक्षिण की नदियों को 90 प्रतिशत जल और उत्तर की नदियों को 80 प्रतिशत जल जून से सितंबर तक के चार महीनों में प्राप्त होता है। इससे मानसून के महीनों में पानी की प्रचुरता और गर्मियों में पानी की कमी होती है। देश के लगभग सभी क्षेत्रों में मानसून के महीनों के दौरान काफी पानी उपलब्ध होता है। इस पानी का भंडारण करके बाढ़ और सूखे की समस्या का सामना किया जा सकता है।

भारत की जनसंख्या में वृद्धि और उनके विस्तार के कारण हमारे अनेक नगर पानी की समस्या का सामना कर रहे हैं। गर्मियों में यह समस्या अधिक उग्र हो जाती है। सिंचाई, औद्योगिक कार्यों, सफाई आदि में पानी का अंधाधुंध प्रयोग करने से भौम जल के स्तर में कमी हो रही है। औद्योगिक कचरे में विषैले रसायनों की उपस्थिति से नदियों, झीलों और सरोवरों का पानी प्रदूषित हो रहा है। शहरीकरण से यह समस्या और भी उग्र हो गई है।

अब शहरीकरण और शहरों के क्षेत्र में विस्तार से बारिश का पानी जमीन के नीचे नहीं पहुंचता है। वह नालियों-नालों में होकर बह जाता है। शहरों में आवासीय बस्तियों, पक्की सड़कों आदि के निर्माण के बाद बहुत कम क्षेत्र खुला रहता है। एक सरकारी अनुमान के अनुसार राजधानी दिल्ली की छतों का क्षेत्रफल लगभग 138 वर्ग किलोमीटर है। ये छतें वर्षा का 6.8 करोड़ घनमीटर जल प्राप्त करती हैं। इस समय यह सारा पानी नालियों-नालों में होकर यमुना में बह जाता है। अगर इसमें से केवल 10 प्रतिशत का संग्रह करके उसे जमीन के अंदर पहुंचा दिया जाए तो गर्मियों में पानी की कमी नहीं रहेगी।

पीने के पानी और उद्योगों के लिए पानी की जरूरत बढ़ गई है। कुछ किस्म की फसलें जैसे कि गन्ने की खेती, ज्वार, बाजरे, मक्का आदि मोटे अनाजों की तुलना में बहुत अधिक पानी लेती है। अधिकांश स्थानों पर सभी किस्म के अतिरिक्त पानी की यह जरूरत कुंओं, नलकूपों के जरिए भूमिगत जल से पूरी की जाती है। इसके कारण भूमि जल का स्तर बहुत नीचे चला गया है और कुछ स्थानों पर गर्मियों में कुएं सूख भी जाते हैं। भूमिगत जल का अंधाधुंध इस्तेमाल करने पर पानी की गुणवत्ता पर भी असर पड़ता है जिससे उद्योग तथा कृषि पर असर होता है।

स्थिति से निपटने के उपाय

भारत में जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण यह समस्या दिनों-दिन जटिल हो रही है। इस स्थिति पर काबू पाने के लिए आवश्यक है कि पानी की एक-एक बूंद की रक्षा की जाए और उसका सोच समझ कर उपयोग किया जाए। अब तक बारिश के पानी को नालियों-नालों के जरिए बहने दिया ज़ाता था। जब तक जनसंख्या कम थी और देश के 40-50 प्रतिशत क्षेत्र में वन थे, चिंता की कोई बात नहीं थी। बारिश का अधिकांश पानी स्वतः जमीन के भीतर चला जाता था। लेकिन वन क्षेत्र में अत्यधिक कमी आने से अब स्थिति अत्यंत चिंतनीय हो गई है।

पूरे देश के कुछ क्षेत्र प्रति वर्ष अतिवृष्टि और अनावृष्टि से पीड़ित रहते हैं। जहां देश के एक भाग में अतिवृष्टि और बाढ़ के कारण किसानों के घर,

खेत, खलिहान सभी पानी में डूब जाते हैं, देश के दूसरे भाग में भयंकर सूखे के कारण किसानों की फसल मारी जाती है, उनके जानवरों के लिए घास उपलब्ध नहीं होती और पीने के पानी की समस्या पैदा हो जाती है। अगर पानी का युक्तिसंगत ढंग से उपयोग, संग्रह और संरक्षण किया जाए तो बाढ़ और सूखे की समस्या का समाधान हो सकता है।

प्रायः सभी नालियों-नालों का पानी नदियों में गिरने से बाढ़ की समस्या उग्र हो जाती है। बाढ़ काफी बड़े इलाके में तबाही मचाती है। बाढ़ की मार सबसे गरीब तबके पर अधिक पड़ती है। अगर बरसात के पानी को छोटे-छोटे तालाब, सरोवर और बांध बनाकर संग्रह कर लिया जाए और उसे जमीन के भीतर पहुंचा दिया जाए तो बाढ़ की तबाही पर काफी नियंत्रण किया जा सकता है।

पानी की कमी मनुष्यों और जानवरों दोनों को कष्ट देती है। पानी की कमी के कारण पर्यावरण को क्षति पहुंचती है और मनुष्यों तथा जानवरों – दोनों को तकलीफ उठानी पड़ती है।

एक ओर गंदे नालों की संख्या में वृद्धि, नगर पालिकाओं की जल-मल निकासी व्यवस्था, औद्योगिक कचरे और विषैले रसायनों से युक्त कचरे को नालियों-नालों में बहा देने, कृषि रसायनों और कीटनाशी दवाओं के प्रयोग से अच्छे किस्म का पानी दुर्लभ होता जा रहा है, दूसरी ओर जल स्रोतों-साधनों की रक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान न देने से देश के सीमित जल साधन तेजी से लुप्त हो रहे हैं और उनकी संख्या और गुणवत्ता कम हो रही है। चिंता की बात यह है कि अगर हमने जल साधनों का संरक्षण और विकास नहीं किया तो अगले पचास वर्षों में हमें पानी के भीषण अकाल का सामना करना पड़ेगा।

आने वाले खतरे के संकेत

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश की जनसंख्या 35 करोड़ थी और प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष पानी की उपलब्धता 5,000 घनमीटर थी। आज देश की जनसंख्या एक अरब से अधिक है इससे प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष पानी उपलब्धता

1,950 घनमीटर रह गई है। सन् 2010 तक यह उपलब्धता 1,000 घनमीटर ही रह जाएगी। धीरे-धीरे जनसंख्या वृद्धि, जल स्रोतों की उपेक्षा और जीवन स्तर में सुधार के साथ पानी की खपत में वृद्धि के कारण पानी की प्रचुरता पानी की दुर्लभता में बदल रही है।

अगर हम अपने जल साधनों का संरक्षण करें और उपलब्ध पानी का उचित ढंग से उपयोग करें तो हमें पानी की कमी का सामना नहीं करना पड़ेगा। अनुमान है कि भारत में प्रति वर्ष 4,000 अरब घनमीटर पानी बरसता है। इसमें से प्रति वर्ष औसतन 1,953 अरब घनमीटर पानी प्रवाहित होता है। शेष पानी वाष्प बन कर उड़ जाता है या जमीन को नम करने के बाद धरती में चला जाता है। इस पानी में से केवल 400 अरब घनमीटर पानी जमीन की सतह पर और जमीन की सतह के नीचे प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार हम अभी वर्षा से प्राप्त जल का केवल 10 प्रतिशत पानी का इस्तेमाल करते हैं।

लगभग दस वर्षों में जब देश की जनसंख्या में 20 प्रतिशत की वृद्धि हो जाएगी, हम वर्षा के पानी की वर्तमान जल भंडारण क्षमता में 10 प्रतिशत की वृद्धि भी नहीं कर पाएंगे। वर्षा के पानी का संग्रह करके इसका जमीन के भीतर जाना सुगम बनाकर न केवल बाढ़ और सूखे की समस्या पर नियंत्रण किया जा सकता है बल्कि पर्यावरण की भी रक्षा की जा सकती है। सच तो यह है कि पानी की रक्षा पर्यावरण की रक्षा की ओर पहला कदम है।

पानी की आवश्यकता का आबादी में वृद्धि, बेहतर जीवन की इच्छा, ऊर्जा और खाद्यान्नों की बढ़ती मांग और औद्योगिक उत्पादन से घनिष्ठ संबंध है। इस समय हमें 600 अरब घनमीटर पानी की जरूरत होती है। पानी की जरूरत वर्तमान जल भंडारों (झीलों, सरोवरों आरै तालाबों), भूमिगत जल, कुओं, नलकूपों और नदियों से पूरी की जाती है।

पचास वर्ष बाद जब भारत की जनसंख्या डेढ़ अरब हो जाएगी हमारी शुद्ध जल की आवश्यकता 1,200 अरब घनमीटर हो जाएगी। दूसरे शब्दों में हम जितना पानी इस समय इस्तेमाल कर रहे हैं उससे दुगुना पानी

इस्तेमाल करने लगेंगे। अगर हमने अभी से इस विषय की ओर ध्यान नहीं दिया तो पचास वर्ष बाद हमारी जनता के कुछ वर्गों को मुनासिब दाम पर शुद्ध पीने का पानी उपलब्ध नहीं हो सकेगा।

जल संग्रह के उपाय

भारत में बरसात से अतिरिक्त 600 अरब घनमीटर पानी संग्रह करने का कोई सरल कार्य नहीं है। इतना पानी संग्रह करने के लिए हमें लाखों सरोवर, तालाब, ताल-तलैया, पोखर और कुंड बनाने पड़ेंगे। अपनी छोटी-बड़ी नदियों पर हजारों छोटे-बड़े बांध बनाने पड़ेंगे। इससे भी महत्वपूर्ण यह बात है कि हमें अपनी जनता को यह बताना होगा कि पानी की हर बूंद बहुमूल्य है और उसका उचित उपयोग किया जाना चाहिए। हमें जनता को पानी के भावी अकाल की आशंका और उससे निपटने के उपायों में प्रशिक्षित करना होगा।

जल संग्रह करने के लिए लंबी-चौड़ी योजनाएं बनाने, तकनीकी सलाह लेने और काफी धन जुटाने की जरूरत नहीं है। इसके लिए ग्रामीणों को सरकार का मुंह ताकने की भी जरूरत नहीं है। ग्रामीण अपने साधनों और श्रम से इस तरह की जल संग्रह करने की योजनाएं बना और उन्हें कार्यान्वित कर सकते हैं। हमारे पूर्वज छोटे-छोटे तालाब, बांध बनाकर यह काम करते थे। हमें अब उन्हीं के दिखाए रास्ते पर चलना है। इस दिशा में महाराष्ट्र में रालेगांव सिद्धी और राजस्थान में अलवर के लोगों ने अपने साधनों और श्रम से जल संग्रह की अनेक छोटी-छोटी योजनाओं को कार्यान्वित करके अपने क्षेत्र की कायापलट कर दी। उन्होंने जल संग्रह के लिए छोटे-छोटे बांध और सरोवर बनाए। उन्होंने वर्षा के पानी को बहने से बचाया और उसका संग्रह किया। इससे थोड़े ही समय में इस क्षेत्र की उजाड़, ऊसर, सूखी धरती नंदन कानन में बदल गई। जिस स्थान पर पहले घास भी नहीं होती थी वहां फसलें लहलहाने लगीं, अनेक तरह के फलों के वृक्ष फलों से लद गए। पहले गांव के लोगों को जानवरों के लिए घास, खाना पकाने के लिए ईंधन और पीने के पानी की दिक्कत होती थी। पानी के संग्रह की व्यवस्था के बाद अब इस क्षेत्र में ग्रामवासियों ने अपना पंचायती वन लगा दिया है। इस वन में तेजी से बढ़ने वाली प्रजातियों के वृक्ष लगाए गए हैं। ग्रामवासी बारी-बारी से वन

की चौकसी करते हैं और सभी ग्रामवासियों को उनके पशुओं के लिए चारा और जलाने के लिए ईंधन उपलब्ध कराने का प्रयास करते हैं।

इन दोनों स्थानों पर हुए अच्छे कार्य की खबर सुगंध की तरह सर्वत्र फैल गई। मध्य प्रदेश के मंदसौर जिले में भयंकर सूखा पड़ा था, पानी के अधिकांश स्रोत सूख गए। तालाबों, सरोवरों में मुद्दत से गाद नहीं निकाली गई थी। बारिश के पानी का संग्रह न करने के कारण अधिकांश कुओं का जलस्तर बहुत नीचे चला गया था और कुछ कुंए सूख गए थे।

इस क्षेत्र के लोग जब सहायता के लिए जिले के कलक्टर से मिले तो उन्होंने लोगों को बताया कि सरकार के पास धन नहीं है। कलक्टर ने लोगों को सलाह दी कि चंदे, श्रमदान और सरकारी तकनीकी सहायता से अपने जल स्रोतों का पुनरुद्धार करें। उन्हें फिर से सक्रिय करें। कलक्टर ने पहले क्षेत्र के सभी जल-स्रोतों की सूची बनवाई और फिर लोगों से वर्षा शुरू होने से पहले सभी जल स्रोतों की मरम्मत और सुधार का काम अपने हाथ में लेने को कहा। दिकोला गांव ने निवासियों की एक बैठक बुलाई। बैठक में गांव के सरपंच ने 6,500 रुपए देने की घोषणा की। सभी गांव निवासियों ने शक्ति भर चंदा दिया। कुछ ही देर में एक लाख रुपए की रकम हो गई। इस धन और गांव निवासियों के श्रमदान से सिवना और सोचली नदी के संगम पर सरकारी इंजीनियर की सलाह-निर्देशों के अनुसार पुराने बांध की मरम्मत-सुधार का काम किया गया। सारा कार्य फटाफट हो गया। बांध के निर्माण के बाद इलाके का नक्शा बदल गया। चारों तरफ हरियाली छा गई, निष्क्रिय पड़े गांव के हैंड-पंप फिर चालू हो गए। अगर बांध का निर्माण सरकारी तरीके से किया जाता तो उसके ऊपर 15 लाख रुपए खर्च आते। अब इस बांध के निर्माण से 700 हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जा रही है।

इस तरह परलिया मारूगांव के लोगों ने चंदे से 7 लाख रुपए एकत्र करके पानी को बेकार बहने से रोका। बरूजाना गांव के लोगों ने एक पोखर को झील का रूप दिया।

मंदसौर जिले में अब तक ग्रामवासी पानी के स्रोतों की रक्षा करने और बारिश के पानी का भंडारण करने के लिए साढ़े तीन करोड़ रुपए खर्च कर

चुके हैं। इससे 33 झीलों की मरम्मत-सुधार का कार्य किया गया, 166 झीलों, सरोवरों की गाद निकाली गई, छह बांध बनाए गए, 3,447 पोखर सरोवर खोदे गए और वर्षा के जल का संग्रह करके 5,634 हैंड-पंप फिर से सक्रिय किए गए। इस तरह स्वावलंबन और मेहनत की राह अपना कर लोगों ने अपनी भाग्य-रेखा बदल दी।

12. मौसम वैज्ञानिक यंत्र और उनका उपयोग

मौसम सदैव अपना रंग बदलता रहता है, विशेषकर भारत-जैसे मानसूनी प्रकार की जलवायु वाले देश में मौसम में होने वाला अचानक परिवर्तन कोई नई बात नहीं है। मौसम में बदलाव दिन-प्रतिदिन नहीं, बल्कि कभी तो कुछ घंटों में हो जाता है। अभी सुनहली धूप खिली है कि कुछ घंटों में ही आसमान में बादल छाने लगे और रिमझिम वर्षा होने लगी।

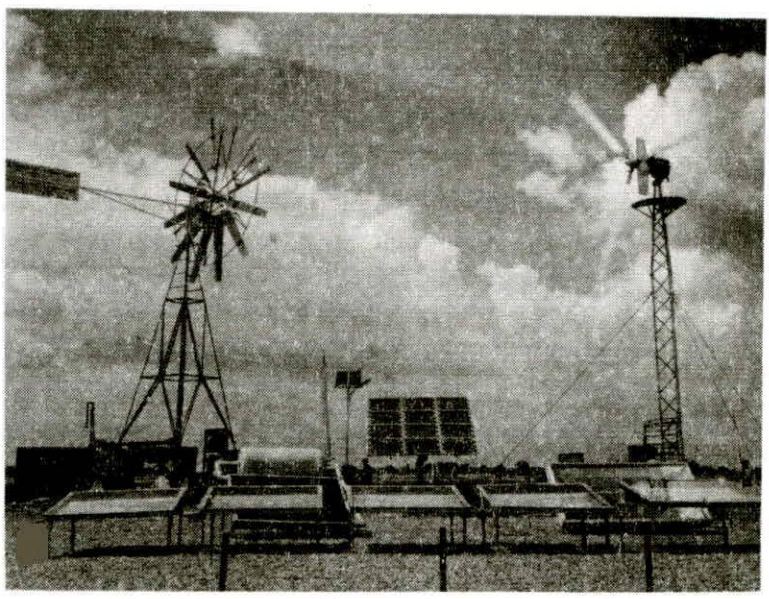

बादलों से घिरा कांगन हेड़ी का ऊर्जा पार्क

मौसम तथा उससे निर्धारित होने वाली जलवायु के लिए कुछ मूल तत्व हैं जिनमें तापमान, आर्द्रता, वायु का दबाव या वायुभार, पवन तथा उसके बहाव की दिशा, बादल, वर्षा आदि प्रमुख हैं। किसी स्थान या क्षेत्र के लिए मौसम की जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से वैज्ञानिकों ने कई प्रकार के यंत्रों को बनाया है।

वैज्ञानिक यंत्रों की सहायता से केवल मौसम की जानकारी ही नहीं मिलती है, बल्कि मौसम का पूर्वानुमान भी लगाया जाता है। मौसम संबंधी जानकारी देने वाली विद्या को मौसमविज्ञान कहा जाता है। जिन यंत्रों के सहारे मौसम के विभिन्न तत्वों की जानकारी ली जाती है, उन्हें मौसम वैज्ञानिक यंत्र कहते हैं।

किसी भी मौसम के लिए तापमान सबसे महत्वपूर्ण अवयव है। वातावरण में ताप की स्थिति को मापने वाले यंत्र को 'तापमापी' या थर्मामीटर कहते हैं। तापमापी यंत्र का निर्माण इस मौलिक सिद्धांत के अनुसार किया गया है कि विभिन्न पदार्थों पर तापमान के परिवर्तन की भिन्न प्रक्रिया होती है। तापमापी की नली में जिस पदार्थ का इस्तेमाल किया जाता है, वह पारा होता है या अलकोहल। शीशे की नली में रखा हुआ यह पदार्थ गर्म होने पर तेजी से फैलता है और ऊपर की ओर चढ़ता है। इसके विपरीत ठंडक होने पर अधिक सिकुड़ता है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप कांच की नली में यह द्रव ताप अधिक होने पर ऊँचा उठकर अधिक तापमान की सूचना देता है। ताप कम होने पर यह द्रव सिकुड़ता है और नीचे की ओर उतरकर कम तापमान का संकेत देता है। द्रव की इस नली पर अंशों में (डिग्री) अंक बने रहते हैं, जिन्हें पढ़कर तापमान का पता चलता है।

मुख्यतः तापमान को 'सेल्सियस' या 'फारेनहाइट' के अंशों (डिग्री) में अभिव्यक्त किया जाता है। ये तापमान मापी अलग-अलग प्रकार के होते हैं, जिनके नाम क्रमशः इनके आविष्कर्ताओं — सेल्सियस तथा फारेनहाइट के व्यक्तिगत नामों के अनुसार रखे गए हैं। भारत में दशमलव प्रणाली के अनुसार बने सेल्सियस तापमापी का उपयोग अधिक किया जाता है। तापमान में पानी जमने (हिमांक) तथा पानी उबलने (क्वथनांक) की स्थिति को विशेष महत्व दिया जाता है। सेल्सियस के अनुसार सागर तल पर बर्फ या हिमबिंदु को 0 डिग्री (शून्यअंश) तथा पानी उबलने की स्थिति को 100

डिग्री (एक सौ अंश) की मान्यता दी गई है। जबकि मनुष्य के शरीर का सामान्य तापमान 37 डिग्री से 0 डिग्री माना जाता है।

किसी स्थान पर तापमान सदैव एक-सा नहीं रहता, बल्कि सदैव बदलता रहता है। रात-दिन के 24 घंटों में अधिकतम और न्यूनतम तापमान की जानकारी के लिए एक विशेष प्रकार के तापमापी यंत्र का उपयोग किया जाता है जिसे सिक्स का अधिकतम-न्यूनतम तापमापी कहा जाता है।

धरती पर वातावरण के भार को मापने के लिए जिस यंत्र का उपयोग किया जाता है, उसे वायुदाबमापी या बैरोमीटर कहा जाता है। साधारणतः वायुदाबमापी यंत्र में पारे का उपयोग किया जाता है। अब आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों से, बिना पारे के इस्तेमाल से, वायुभार को मापने की प्रक्रिया आरंभ की जा चुकी है।

मौसम की जानकारी के लिए वायुभार के साथ ही हवा के बहाव की स्थिति का ज्ञान भी आवश्यक है। स्थिर वायु जैसे ही गतिमान होती है तो उसे हवा या पवन कहते हैं। वातावरण में पवन तथा उसकी प्रवाह दिशा की जानकारी प्राप्त करने के लिए पवन सूचक या पवन दिशा दर्शक यंत्र (विंड वेन) का उपयोग किया जाता है। पवन की गति के साथ ही यह यंत्र पवन की बहाव दिशा की सूचना भी देता रहता है। अब आधुनिक मौसम विज्ञान केंद्रों में पवन वेग मापी यंत्रों के साथ इलेक्ट्रॉनिक यंत्र तथा कंप्यूटर लगा दिए गए हैं जिससे पवन की बदलती बहाव दिशा और गति का लेखा-जोखा स्वचालित रूप में होता रहता है।

यह एक मान्य वैज्ञानिक तथ्य है कि मौसम की स्थिति के उचित विश्लेषण के लिए वातावरण में व्याप्त आर्द्रता की जानकारी का विशेष महत्व है। सामान्य रूप में आर्द्रता का मतलब किसी वायु राशि में जलवाष्प की स्थिति से है।

वायु में आर्द्रता को दो प्रकार से अभिव्यक्त किया जाता है:

1. निरपेक्ष आर्द्रता
2. सापेक्षिक आर्द्रता।

मौसम में आर्द्रता की जानकारी के लिए सामान्यतः सापेक्षिक आर्द्रता की बात की जाती है। सापेक्षिक आर्द्रता को प्रतिशत में अभिव्यक्त किया जाता है, जिससे निश्चित तापमान पर वायु में आर्द्रता धारण करने की क्षमता और उसमें वर्तमान आर्द्रता का संकेत मिलता है।

इसके लिए आर्द्र तथा शुष्क बल्ब तापमापी यंत्र का उपयोग किया जाता है। इस आर्द्रता मापी (हाइग्रोमीटर) में यदि आर्द्र बल्ब का तापमान तेजी से कम होने लगता है तो आर्द्रता की स्थिति बहुत कम मानी जाती है। यदि तापमान अधिक कम नहीं हो रहा है तो यह वायु में आर्द्रता अधिक होने का संकेत है।

मौसम, विशेषकर अपने देश भारत के मौसम में, वर्षा को अधिक महत्त्व दिया जाता है। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है। बादलों से जल वर्षा के अलावा हिमपात, ओले आदि भी प्राप्त होते हैं। खुले आसमान से गिरने वाली जल वर्षा को मापने के लिए जिस यंत्र का इस्तेमाल किया जाता है उसे वर्षामापी (रेन गेज) कहते हैं।

वर्षामापी यंत्र को खुले स्थान में या मैदान में रखकर उपयोग में लाते हैं। यह वास्तविक रूप में एक बर्तन है, जिसमें वर्षा का जल संचित होता है। इसी जल को 24 घंटों के बाद एक अलग पात्र में डालकर माप लिया जाता है। जल वर्षा की मात्रा को मिलीमीटर में अभिव्यक्त किया जाता है।

सभ्यता के विकास के साथ पूरे विश्व में वैज्ञानिक प्रगति हो रही है। कई विकसित देशों में तो वैज्ञानिक प्रगति और आविष्कारों को लेकर आपसी प्रतिस्पर्धा की स्थिति आ गई है। इस प्रसंग में यह ध्यान देने की बात है कि मौसम विज्ञान के क्षेत्र में कई देशों के द्वारा गहन अनुसंधान और अन्वेषण के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

मानसून संबंधी अनुसंधान के मामले में केवल सोवियत संघ वाले एशियाई देश ही नहीं बल्कि अमेरिका और यूरोपीय देशों की भागीदारी भी रही है। इनका सम्मिलित प्रयास 'मोनेक्स' के रूप में फलदायक रहा है।

आधुनिक वैज्ञानिक युग में मौसमविज्ञान के पारंपरिक यंत्रों के अलावा 'राडार टोही विमान' जैसे कई अधुनातन यंत्र विकसित किए गए हैं, जिनसे मौसम, विशेषकर मानसून की गतिविधि संबंधी तथ्यगत और चित्रात्मक जानकारी प्राप्त की जाने लगी है। इस क्षेत्र में 'राडार' यंत्र के साथ कंप्यूटर जोड़ दिए जाने से कम समय में ही महत्वपूर्ण परिणाम मिलने लगे हैं।

मानसून पवन का आगमन, उसकी प्रवाह दिशा, गति आदि का विवरण तटीय क्षेत्रों में स्थापित मौसम वैज्ञानिक केंद्रों और 'राडार' से सहज में ही मिलने लगे हैं। यही नहीं, मानसून पवन से प्रभावित हिंद महासागर के क्षेत्र, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में उत्पन्न होकर गतिशील होने वाले चक्रवातीय तूफानों की जानकारी 'राडार' के द्वारा समय पर मिलने लगी है, जिससे कि इन तूफानों से होने वाले नुकसान से बचाव किया जा सकता है। इस दिशा में 'राडार' यंत्र काफी प्रभावी तथा उपयोगी साबित हो रहे हैं। अब 'राडार' युक्त टोही विमान भी बनने लगे हैं जिनके द्वारा धरती से ऊपर 10 से 25 किमी. तक की वास्तविक परिस्थितियों का पता लगाया जा सकत है।

13. मानसून और लोकवाणी

यह तथ्य है कि कृषि प्रधान देश भारत गांवों में बसता है, जहां लोगों का मुख्य धंधा खेतीबाड़ी करना है। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, कहावतों का अधिक प्रचलन गांवों में है। इसलिए स्वाभाविक है कि कृषि संबंधी ऐसी अधिक कहावतें कही जाती हैं जिनका संदर्भ वर्षा अथवा सूखा से होता है। ऐसी अधिकांश कहावतें घाघ और भड्डरी के नाम से कही गई हैं। कई इलाकों में सिंचाई सुविधाओं के अभाव से वर्षा का महत्व अधिक बढ़ जाता है। सामान्यतः अब भी अपने देश में कृषि वर्षा पर विशेषकर मानसूनी वर्षा पर निर्भर है। अतएव कृषि संबंधी अनेक कहावतें वर्षा होने या न होने का संकेत देती हैं। वर्षा के संबंध में ऐसी कहावतों का कोई ठोस वैज्ञानिक आधार नहीं है, किंतु युगों-युगों से चली आ रही ऐसी परंपरागत कहावतों में अनुभव और बुद्धि का पुट है जिसकी वजह से आज के ग्रामवासी किसानों का इन पर अटूट विश्वास है।

इस प्रकार की कहावतों के पीछे कोई घटना या कथा नहीं है, पर ये काफी लोकप्रिय हो गई हैं। खेती के लिए खेती अनुकूल अथवा प्रतिकूल मौसम के अनुमान तथा भविष्यवाणी संबंधी प्रचलित कहावतों को यहां संजोया गया है।

सावन शुक्ला सप्तमी, छुप के उगे भान,
घाघ कहे घाघिन से, छप्पर उपजे धान।

ऐसी मान्यता है कि सावन मास की शुक्ल सप्तमी को सूरज बादलों में छिपकर उदय हो तो सावन महीने में ही भारी वर्षा की संभावना है जिससे छप्पर पर भी धान के गिरे दानों से पौधे उग जाएंगे।

अगहर खेती अगहर मार।
घाघ कहैं वो कबहुं न हार।।

इस कहावत में दो बातों को एक साथ रखा गया है। खेती और मारपीट के मामलों में पहल करने वाले लोग कभी नहीं हारते। साधारणतः यह ठीक है कि लड़ाई झगड़े में पहल करने की नीति को सर्वत्र श्रेय दिया गया है। खेती के मामले में हमेशा अगहर होना लाभदायक नहीं होता। फिर भी खेती में आगे या पहले बौनी करने से लाभ की संभावना अधिक रहती है।

आम्बाझौर बहै पुरवाई।
तौ जानो बरखा रितु आई।।

यदि कुछ दिनों तक जोरों के साथ पुरबा हवा चले तो समझना चाहिए वर्षाऋतु आने वाली है। यह बात उत्तरी और पूर्वी भारत के लिए सही है परंतु पश्चिमी भारत में पश्चिमी हवा से भी पानी बरसता है। पुरव हवा में नमी होती है, जो बंगाल की खाड़ी के उठे हुए मानसून पवन के साथ चलती है। इस कहावत में आम्बाझौर शब्द बड़ा सारगर्भित है। आमों की झौर गिराने वाली तेज हवा जो पूर्व से आती है, होली के आस-पास बैसाख तक सूखी पछुवा हवा बहती है जिससे पेड़ों के पत्ते झर जाते हैं। चैत्र बैसाख में आम फलते-फूलते हैं। जेठ-आषाढ़ में पुरबा हवा चलने लगती है। जब लगातार यह हवा काफी दिनों तक चले तो समझना चाहिए कि वर्षा होगी। मौसम संबंधी यह एक महत्वपूर्ण संकेत है।

अब पछताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गईं खेत।

काम बिगड़ जाने पर पछताने से क्या होता है। पश्चात्ताप से काम बनता नहीं। जब मनुष्य कुछ कर सकता था, जिससे दुःखपूर्ण स्थिति उत्पन्न न हो, परंतु तब ध्यान नहीं दिया। बाद में बिगड़ जाने पर पछताने से बिगड़ा काम नहीं बनता। अगर खेत की रखवाली करता तो चिड़िया खेत न चुग पाती, नुकसान न होता। परंतु तब तो कुछ न किया जब आवश्यक था अब खेत चुग जाने पर पश्चाताप से कोई लाभ नहीं। इस कहावत में समय पर काम करने की बड़ी अच्छी सीख है। किसानों को इससे बड़ा नुकसान और क्या हो सकता है कि उनका खेत चुग जाए। यदि ऐसे महत्वपूर्ण कार्य के प्रति सजग नहीं रह सकते तो पछताना ही पड़ेगा और ऐसे में पछताने से भी

कोई लाभ नहीं होगा।

संत कबीर के द्वारा कहा गया पूरा दोहा इस प्रकार है-
आछे दिन पाछे गए, गुरु से किया न हेत,
अब पछताये होत क्या, चिड़ियां चुग गईं खेत।

भक्त कवि कबीर के अनुसार गुरु की महिमा अपरंपार है, बिना गुरु के जीवन सार्थक नहीं है। उन्होंने स्वीकार किया कि अच्छे दिन व्यतीत हो जाएं और गुरु से नेह नहीं लगा पाओ तो वही बात हुई कि चिड़ियों द्वारा पूरा खेत चुग लिए जाने पर बैठकर पछताया जाए।

उदे अगस्त फूले वन कास।
अब छाड़ौ बरखा कै आस।।

अगस्त नक्षत्र के उदय हो जाने पर और कांस फूलने के बाद वर्षा की आशा नहीं करनी चाहिए क्योंकि तब तक वर्षा के महीने सांवन-भादों बीत चुके होते हैं या बीत रहे होते हैं। यह मौसम संबंधी संकेत किसानों के लिए है। हमारी खेती वर्षा पर निर्भर हैं। अब नहरों के खुद जाने से और ट्यूबवेल लग जाने से कुछ सुविधा हो गई है फिर भी हमारी अधिकांश खेती वर्षा पर निर्भर होती है, क्योंकि गर्मी में सूखी धरती साधारण सिंचाई से गीली नहीं होती है।

उतरे जेठ जो बोले दादुर।
कहैं भड्डरी बरसैं बादर।

ज्येष्ठ मास के समाप्त होते-होते यदि मेंढ़क बोलें तो समझना चाहिए कि बादल पानी बरसाएंगे। भड्डरी की कहावतें भी काफी प्रचलित है। घाघ की तरह भड्डरी ब्राह्मणों में एक जाति भी होती है, जो भिक्षावृत्ति और ज्योतिष के सहारे अपना जीवन पालन करती है। अतः भड्डरी के नाम से प्रख्यात कहावतें, किसी एक व्यक्ति की बनाई नहीं हो भी सकती है। भड्डरी ज्योतिषी को भी कहते हैं। अतः भविष्य विचार और भाषण का कार्य कोई भी भड्डरी कर सकता है। 'कहैं भड्डरी' या 'ऐसा बोले भड्डरी' का मतलब यह भी हो सकता है कि ज्योतिषी ऐसा कहता है न कि कोई खास व्यक्ति जिसका नाम भड्डरी है। भड्डरी के नाम से प्रचलित अधिकांश कहावतें इसी

प्रकार की हैं जिनका ज्योतिष से कुछ संबंध है। अभी तक भड्डरी नाम का जीवन वृत्त प्राप्त भी नहीं हुआ है पर मौसम संबंधी कहावत प्रचलित हो गई है।

उदित अगस्त पंथ जल सोखा।

अगस्त नक्षत्र के उदय होने पर वर्षाऋतु का अंत समझना चाहिए। रास्तों में बहने वाला पानी सूख जाता है। गांवों की कच्ची गलियों तथा बैलगाड़ियों की लीकों में पानी भर जाता है। वस्तुतः पानी का भी वही मार्ग बन जाता है, जो मनुष्यों के जाने का है। परंतु बरसात समाप्त होने पर रास्तों का पानी सूख जाता है और आवागमन प्रारभ हो जाता है। ज्येष्ठ मास में तेज धूप के कारण यात्रा का निषेध है, परंतु चौमासे में भी बरसात यात्रा वर्जित है। बौद्ध जो हमेशा विचरण करते रहते थे वर्षाऋतु में संघ-विहारों में विश्राम करते थे। अस्तु, अगस्त नक्षत्र के उदय होने पर वर्षाऋतु का अंत हो जाता है और रास्ते खुल जाते हैं।

जो फागुन मास बहै पुरवाई।
तौ जान्यों गेहूँ गेरुई थाई।।

फागुन के महीने में जब गेहूँ पक जाता है और कटनी शुरू हो जाती है, उस समय यदि पछुवा हवा न चली पुरबा नम हवा चली तो गेहूँ ठीक से सूख नहीं पाएगा। उसी हालत में वह बखारी में लगा दिया जाएगा तो उससे गेरुई रोग जरूर लगेगा और गेहूँ खराब हो जाएगा। पुरवा हवा की कमी के कारण ऐसा होता है।

दिन का बादर राति तरैया।
न जानौ प्रभु काह करैया।।

दिन में बादल छाए रहते हों, रात में आकाश साफ हो जाता हो, तो सर्दी के मौसम में पाला गिरता है, जिससे फसल नष्ट हो जाती है। इसीलिए इस कहावत में कहा गया है कि यदि ऐसा मौसम रहे तो पता नहीं भगवान क्या मुसीबत पैदा करने वाला है। बादलों से पाला रुक जाता है। सर्दी भी कम रहती है। परंतु बादलों के बाद रात में आसमान खुल जाने का मतलब

यह होता है कि सर्दी की रोकथाम नहीं हो सकती और रात में पाला गिरता है। बरसात में भी ऐसी हालत में वर्षा नहीं होती।

दिन मां गरमी रात मां ओस।
कहै घाघ बरखा सौ कोस।।

यदि दिन में गर्मी रहती हो और रात में ओस गिरती हो तो समझना चाहिए कि अभी वर्षा आने में बहुत दिन है। ये वर्षा के विरुद्ध लक्षण हैं, जिन्हें देखकर कहा जा सकता है कि अभी वर्षा नहीं होगी।

माघै पूस बहै पुरवाई।
तो सरसों का माहू खाई।।

पूस और माघ महीने में यदि पूरबा हवा चली तो सरसों में माहू नामक कीड़ा लग जाएगा और सरसों नष्ट हो जाएगी। पूरबा हवा बहुत ही निकम्मी होती है। इसमें नमी होती है और वह न केवल फसल को चौपट करती है, बल्कि मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी बुरा असर करती है।

चढ़त जो बरखे चित्रा उतरत बरखे हस्त।
कितनौ राजा डांड़ लेय हारै नाहिं गृहस्त।।

यह भी सामयिक वर्षा संबंधी कहावत है। चित्रा नक्षत्र के लगने पर और हस्त नक्षत्र के उतरने पर वर्षा हो तो खेती इतनी अच्छी होती है कि राजा कितना भी दंड (जुर्माना) मांगे गृहस्थ दे सकता है; और उसका अधिक नुकसान नहीं होता। इस कहावत से इसी बात की ओर संकेत है कि हमारी खेती सिंचाई के लिए वर्षा पर निर्भर है। अब कदाचित नहरों के हो जाने से खेती में अधिक निश्चितता आ गई है।

चीत के बरखा तीनो जाए मेथी, मास और उखाए।

चित्रा नक्षत्र की बरसात से तीन प्रकार की खेती का नुकसान होता है- मेथी, मास (लोबिया) और ईख। यह कथन बहुत सही नहीं है। प्रायः ऐसा नहीं भी होता है। खेती के बनने बिगड़ने में बरसात के अतिरिक्त और भी बहुत से कारण होते हैं। हर खेत की स्थिति भी अलग-अलग होती है। यह

भी हो सकता है कि चित्रा में बरसात से इन खेतों को लाभ हो, फिर भी यह एक मान्य कहावत है जिस पर किसान काफी ध्यान देते हैं।

जेठू मास जो तपै निरासा।
तौ जान्यौं बरखा कै आसा।।

वर्षा संबंधी कहावत है। जेठ महीने में यदि अधिक गर्मी का तपन हो तो समझना चाहिए कि वर्षा अच्छी होगी। इस सबंध में अनेक कहावतें हैं जिनमें ज्येष्ठ मास के तपने या मृगशिरा नक्षत्र में तपने पर वर्षा की आशा प्रकट की गई है और जब पुरवा हवा चले तो वर्षा कम होगी। पुरवा हवा चलने पर तपन नहीं होती है।

जै दिन जेठ चले पुरवाई।
तै दिन सावन सूखा जाई।।

सामयिक वर्षा संबंधी संकेत है। जितने दिन ज्येष्ठ मास में पुरवा हवा चलेगी उतने ही दिन सावन में सूखे या वर्षाहीन रहेंगे। साधारण धारणा यह है कि ज्येष्ठ मास में खूब तपना चाहिए। न तपने से वर्षा में व्यतिक्रम उपस्थित हो जाता है। सावन वर्षा का महीना है और सावन में वर्षा के न होने पर खेती सूख जाएगी।

परिशिष्ट–एक

मोनेक्स कार्यक्रम

मोनेक्स तीन चरणों में आयोजित किया गया: (1) **शीत मोनेक्स** – पहली दिसंबर, 1978 से 5 मार्च, 1979 तक, जिसमें पूर्वी हिंद और प्रशांत महासागरों तथा मलेशिया और इंडोनेशिया के ऊपरी वायुमंडल के अध्ययन किए गए। (2) **ग्रीष्म मोनेक्स** – पहली मई से 31 अगस्त 1979 तक, जिसका क्षेत्र अफ्रीका के पूर्वी तट से बंगाल की खाड़ी तक था। इसमें अरब सागर तथा आसपास के थलीय क्षेत्रों के, तथा हिंद महासागर की, 10° (डिग्री) दक्षिण 10° (डिग्री) उत्तर अक्षांशों के बीच की पट्टी के ऊपर के वायुमंडल के अध्ययन किए गए और (3) **पश्चिमी अफ्रीकी मानसून प्रयोग** – (डब्ल्यू. ए.एम.ई.एक्स.-वेमैक्स) पहली मई से 12 अगस्त, 1979 तक। इसके अंतर्गत अफ्रीका के पश्चिमी और मध्य भागों के वायुमंडल के अध्ययन किए गए। इस अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम में अनेक देशों के वैज्ञानिकों, अनुसंधान पोतों और अनुसंधान वायुयानों ने भाग लिया था।

उसमें अपसोंडे, डाउनसोंडे और ओमेगासोंडे-जैसे आधुनिकतम उपकरणों तथा दो भूतुल्यकालिक उपग्रहों, 'गोज इंडियन ओशन' और मेटेओसैट का भरपूर उपयोग किया गया। इसमें भारत के चार अनुसंधान पोतों और एक वायुयान ने भाग लिया था।

भारतीय अनुसंधान पोतों का मुख्य कार्यक्षेत्र भारत के निकटवर्ती इलाकों तक ही सीमित था। इस कार्यक्रम के अंतर्गत भारतीय वैज्ञानिकों ने ऊपरी वायुमंडल के पवनों के बारे में अध्ययन किए। इन अध्ययनों में गुब्बारों की मदद से ओमेगासोंडे छोड़े गए और नई नौचालन तकनीकों से उनके उड़ान के प्रेक्षण किए गए।

मौसम वैज्ञानिक प्रेक्षणों की रिकार्डिंग के लिए एक भारतीय वायुयान (एवरो-747) का भी उपयोग किया गया।

मोनेक्स कार्यक्रम के दौरान भारतीय मौसम विभाग ने न केवल नए प्रेक्षण केंद्र स्थापित किए वरन् उन्हें आधुनिकतम उपकरणों से लैस भी किया। गुब्बारों में छोड़े गए उपकरणों से प्राप्त होने वाले संकेतों को ग्रहण करने हेतु आठ प्रेक्षण केंद्रों का एक नेटवर्क स्थापित किया गया। इसके साथ ही मौसम विज्ञान विभाग, अंतरिक्ष विभाग और राष्ट्रीय दूरसंवेदन एजेंसी ने अनेक उपकरणों का निर्माण भी किया।

इस कार्यक्रम के दौरान अनुसंधान पोतों ने सागर की जलधाराओं और अन्य तत्वों के अध्ययन किए। इनसे मौसम वैज्ञानिकों को सागर और वायुमंडल की अंतःक्रियाओं के बारे में अधिक सही अनुमान लगाने में मदद मिली।

उपलब्धियाँ – मोनेक्स कार्यक्रम में किए गए अध्ययनों और प्रयोगों से अनेक महत्वपूर्ण जानकारियां मिली। इनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार है।

केन्या (अफ्रीका) के पूर्वी तट पर, धरती की सतह के नजदीक एक, प्रबल जेट प्रवाह बहता है जो भूमध्यरेखा के उत्तर और दक्षिण, दोनों ओर, स्थित है। इसकी तीव्रता में दैनिक परिवर्तन होते रहते हैं। संवहन क्रियाओं के कारण यह रात की अपेक्षा दिन में क्षीण हो जाता है। अध्ययनों में पाया गया है कि इस जेट प्रवाह की तीव्रता में परिवर्तन मोंजाबिक चैनल के महोर्मि (सर्ज) से संबंधित होते हैं। कुछ महोर्मि निम्न दाब प्रणालियों से संबद्ध होते हैं।

साथ ही उक्त जेट प्रवाह सोमाली, जलधारा और सोमाली तट पर, सागर में होने वाले उत्स्रवण से भी, घनिष्ठ रूप से संबंधित होता है। मानसून (गर्मी की मानसून) की प्रगति के साथ उत्स्रवण का क्षेत्र भी, थोड़ा-सा उत्तर की ओर सरक जाता है।

सोमाली जलधारा के मुख्य प्रवाह में छोटे-छोटे भंवर उपस्थित हैं। इन भंवरों की गतिविधियों तथा जलधारा पर उनके प्रभावों के अध्ययनों से सागर की सतह पर पवनों के प्रतिबलों को समझने में बहुत सहायता मिली है।

मोनेक्स कार्यक्रम के दौरान पता चला कि जब कभी अरब सागर के

उत्तरी भाग में कोई बड़ा प्रतिचक्रवात उपस्थित होता है तब गर्मी के मानसूनों के आने में देर हो जाती है।

दक्षिण गोलार्ध की पवन प्रणालियों के फलस्वरूप अफ्रीका के पूर्वी तट के निकट प्रबल वायु प्रवाह उत्पन्न हो जाते हैं। भूमध्यरेखा से उत्तर की ओर जाने वाले ये प्रवाह मानसून को प्रारंभ करते हैं। किसी-किसी वर्ष मानसून के आरंभ होते ही अरब सागर के दक्षिण-पूर्वी भाग में अनेक प्रकार के बड़े भँवर उत्पन्न हो जाते हैं। इन भँवरों के निर्माण के साथ ही वायुमंडल की गतिज ऊर्जा में वृद्धि हो जाती है। यद्यपि हर वर्ष भँवर उत्पन्न नहीं होते पर मानसून के बहना आरंभ करने पर वायुमंडल की गतिज ऊर्जा में अवश्य वृद्धि हो जाती है।

भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र और पश्चिमी एशियाई देशों के सूखे और अर्धसूखे क्षेत्रों के वायुमंडल में धूल कणों की काफी अधिक मात्रा मौजूद रहती है। प्रयोगों में यह पाया गया कि उत्तर भारत के वायुमंडल के एक वर्गमील क्षेत्र में औसतन 5.5 टन बारीक धूल कण छितराए रहते हैं।

मोनेक्स कार्यक्रम में पृथ्वी की ओर जाने वाले सौर विकिरणों तथा पृथ्वी से परावर्तित होने वाले विकिरणों के बीच के संतुलन के बारे में अनेक नई जानकारियां प्राप्त हुई। इनके अनुसार भारत के पश्चिमी तट पर मानसून पवनों की प्रबलता और दक्षिणी गोलार्ध में मेस्कारने उच्च दाब की घट-बढ़ के बीच घनिष्ठ संबंध है। जब मेस्कारने उच्च दाब में वृद्धि हो जाती है तब बंगाल की खाड़ी में दाब कम हो जाता है तथा मध्य भारत में मानसून अधिक सक्रिय हो जाता है। मेस्कारने क्षेत्र में दाब कम हो जाने से भारतीय मानसून कमजोर पड़ने लगता है।

1. अंग्रेजी-हिंदी पारिभाषिक शब्दावली

Airmass	वायुराशि
Altocumulus (cloud)	मध्य उच्च कपासी (मेघ)
Altostratus (cloud)	मध्य उच्चस्तरी मेघ
Anemometer	पवनवेगमापी
Anticyclone	प्रतिचक्रवात
Atmosphere	वायुमंडल
Biosphere	जीवमंडल
Barometer	वायुदाबमापी
Cape	अंतरीप
Catchment	जलग्रहण
Cirrus	पक्षाभ
Climate	जलवायु
Climatology	जलवायु विज्ञान
Cloud	मेघ
Cloud burst	मेघ प्रस्फोट
Condensation	संघनन
Delta	डेल्टा
Depression	गर्त, अवदाब
Dust storm	आंधी-अंधड

6—10 M of HRD/ND/04

Earth	पृथ्वी
Equator	विषुवत् वृत्त, भूमध्य रेखा
Forecast	पूर्वानुमान
Hemisphere	गोलार्ध
Hydrosphere	जलमंडल
Ice	बर्फ
Iceberg	प्लावी हिम खंड
Industry	उद्योग
Irrigation	सिंचाई
Isohyet	समवर्षा रेखा
Isoneph	सममेघ रेखा
Isotherm	समताप रेखा
Land	भूमि, स्थल
Latitude	अक्षांश (रेखा)
Meteorology	मौसमविज्ञान
Nimbus	वर्षा मेघ
Precipitation	वर्षण
Prevailing wind	प्रचलित पवन
Rain	वर्षा, वृष्टि, बारिश
Rainfall	वृष्टिपात, वर्षा, बारिश
Rain gauge	वर्षामापी
Rain shadow	वृष्टि छाया
Range of Temperature	तापांतर

Region	प्रदेश, क्षेत्र
Rotation	घूर्णन
Season	ऋतु
Snow	हिम, तुहिन
Soil	मृदा
Stratosphere	समताप मंडल
Stratus Cloud	स्तरी मेघ
Surge	महोर्मि/प्रोत्कर्ष
Temperate	शीतोष्ण
Temperature	ताप, तापमान
Thermometer	तापमापी
Thunderstorm	तडित् झंझा
True North	भौगोलिक उत्तर
Visibility	दृश्यता
Warm front	उष्ण वाताग्र
Watershed	1. जलविभाजक 2. जल संभर
Weather	मौसम
Westerlies	पश्चिमी पवन, पश्चिमी हवाएं
Wind	पवन, वात

2. हिंदी-अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली

अधिकतम न्यूनतम तापमापी	maximum-minimum thermometer
अप सौंडे	up sonde
अल निनो	al nino
अव दाब	depression
आवाह क्षेत्र	catchment area
आर्द्र और शुष्क बल्ब तापमापी	wet and dry bulb thermometer
आर्द्रतामापी	hygrometer
उच्च ऊष्मा धारिता	high thermal capacity
उत्तरी अटलांटिक प्रोत्थान	North Atlantic upheavel
उष्ण वाताग्र	warm front
उष्ण कटिबंधीय चक्रवात	tropical cyclone
उष्णक पवन	alm wind
ऊर्ध्व पातन	sublimation
ऊष्मागतिकी	thermodynamics
एल नीनो	al nino
ओमेगा सौंडे	Omega sonde
औसत याम्योत्तर घटक	average meridional component
कपासी मेघ	cumulus cloud
कपासी वर्षी मेघ	cumulo-nimbus
कीटनाशी	insecticide
गतिज ऊर्जा	kinetic energy
गर्त	depression
घूर्णन	rotation
चक्रवातीय तूफान	cyclonic storm

चक्रवातीय विक्षोभ	cyclonic disturbance
जलग्रहण क्षेत्र	catchment area
जलमंडल	hydrosphere
जलवायु प्रावस्था	monsoon phase
जल वाष्प	water vapour
जल विभाजक	watershed
जल संभर	watershed
जल समीर	sea breeze
जेट प्रवाह	jet stream
टोही विमान	reconnaisance plane
डाउन सोंडे	down sonde
तडित् झंझा	thunderstorm
तापमापी	thermometer
थल समीर	land breeze
नाभिकीय कार्य	nucleus work/action
पक्षाभ	cirrus
पक्षाभ मेघ	cirrus cloud
पक्षाभ कपासी मेघ	cirro-cumulus cloud
पक्षाभ स्तरी मेघ	cirro-stratus cloud
परिसंचरण वक्र	circulation cycle
पवन दिशा दर्शक यंत्र	wind vane
पवन वेगमापी	anemometer
पवन सूचक यंत्र	wind vane
पश्चिमी पवन	westerlies
पूर्वानुमान	forecast
पूर्वानुमान प्राचल	forecast parameter
प्रतिचक्रवात	anticyclone

प्राचल	parameter
प्रोत्कर्ष	surge
प्रोत्थान	upheaval
प्रोत्कर्ष	surge
प्लावी हिमखंड	iceberg
बीजारोपण पद्धति	seeding process
भूतुल्यकालिक	geosynchronous
भूमध्यरेखा	equator
मध्य कपासी मेघ	altocumulus cloud
मध्य स्तरी मेघ	altostratus cloud
महोर्मि	surge
मेघ प्रस्फोट	cloud burst
मोनेक्स	monex
राष्ट्रीय सुदूर संवेदन एजेंसी	National Remote Sensing Agency
ला निन्या	la nina
वर्षामापी	rain gauge
वर्षामेघ	nimbus (cloud)
वर्षा स्तरी	nimbus stratus
वायुदाबमापी	barometer
वायुराशि	airmass
विषुवत् वृत्त	equator
व्यापारिक पवन	trade wind
संवहन क्रिया	convection
समताप मंडल	stratosphere
समताप रेखा	isotherm
समवर्षा रेखा	isoneph
समाश्रयण समीकरण	regression equation
समुद्र-वायुमंडलीय प्राचल	ocean-atmospheric parameter

समुद्री प्रोत्थान	oceanic upheaval
सापेक्षिक आर्द्रता	relative humidity
सिरस	cirrus
सुदूर संवेदन	remote sensing
सेशल्ज	seychelles
स्तरी कपासी मेघ	strato-cumulus cloud
स्तरी मेघ	stratus cloud
स्वसमाश्रयण	auto-regression
हिम बिंदु	freezing point
हिमायन	freezing

संदर्भ-ग्रंथ तथा पत्रिकाएँ

1. मानसून
   नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, डा. पी.के. दास
2. एन इंट्रोडक्शन टू क्लाइमेट
   जी.टी. ट्रिवार्था, मैक्ग्रॉ हिल
3. क्लाइमेट एंड द इनवाइरन्मेन्ट
   जे.पी. ग्रिफ्थ पाउल एलेक, लंदन
4. क्लाइमेट्स एंड वेदर इन इंडिया
   एच.एफ. ब्लानफोर्ड, मैकमिलन कंपनी, न्यूयॉर्क
5. ड्राफ्ट्स इन इंडिया
   आर.पी. सरकार, आई. आई. टी., नई दिल्ली
6. भूगोल शब्दसंग्रह
   वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली
7. भारत 2002
   प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली

पत्रिकाएँ

2. भगीरथ — अंग्रेजी और हिंदी, भारत सरकार प्रकाशन
२. योजना, भारत सरकार प्रकाशन
3. पर्यावरण, भारत सरकार प्रकाशन
4. मौसम, भारत सरकार प्रकाशन
5. विज्ञान गरिमा सिंधु, शब्दावली आयोग, भारत सरकार

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली-निर्माण के सिद्धांत

1. अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को यथासंभव उनके प्रचलित अंग्रेजी रूपों में ही अपनाना चाहिए और हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुसार ही उनका लिप्यंतरण करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय शब्दावली के अंतर्गत निम्नलिखित उदाहरण दिए जा सकते हैं:

   (क) तत्त्वों और यौगिकों के नाम, जैसे हाइड्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड आदि;

   (ख) तौल और माप की इकाइयाँ तथा भौतिक परिमाण की इकाइयाँ, जैसे डाइन, कैलॉरी, ऐम्पियर आदि;

   (ग) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम पर बनाए गए हैं, जैसे मार्क्सवाद (कार्ल मार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बॉयकाट (कैप्टन बॉयकाट), गिलोटिन (डॉ. गिलोटिन), गेरीमैंडर (मि. गेरी), एम्पियर (मि. एम्पियर), फ़ारेनहाइट तापमान (मि. फ़ारेनहाइट) आदि;

   (घ) वनस्पति-विज्ञान, प्राणि-विज्ञान, भूविज्ञान आदि की द्विपदी नामावली;

   (ङ) स्थिरांक, जैसे π, g आदि;

   (च) ऐसे अन्य शब्द जिनका आमतौर पर सारे संसार में व्यवहार हो रहा है, जैसे रेडियो, पेट्रोल, रेडार, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि;

   (छ) गणित और विज्ञान की अन्य शाखाओं के संख्यांक, प्रतीक, चिह्न और सूत्र, जैसे साइन, कोसाइन, टैन्जेन्ट, लॉग आदि (गणितीय संक्रियाओं में प्रयुक्त अक्षर रोमन या ग्रीक वर्णमाला के होने चाहिए)।

2. प्रतीक, रोमन लिपि में अंतर्राष्ट्रीय रूप में ही रखे जाएँगे परंतु संक्षिप्त रूप देवनागरी और मानक रूपों से भी, विशेषतः साधारण तौल और माप में लिखे जा सकते हैं, जैसे सेन्टीमीटर का प्रतीक cm हिंदी में भी ऐसे ही प्रयुक्त होगा परंतु देवनागरी में संक्षिप्त रूप से.मी. भी हो सकता है। यह सिद्धांत बाल-साहित्य और लोकप्रिय पुस्तकों में अपनाया जाएगा, परंतु **विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मानक पुस्तकों** में केवल अंतर्राष्ट्रीय प्रतीक, जैसे cm ही प्रयुक्त करना चाहिए।

3. ज्यामितीय आकृतियों में भारतीय लिपियों के अक्षर प्रयुक्त किए जा सकते हैं, जैसे क, ख, ग, या अ, ब, स परंतु त्रिकोणमितीय संबंधों में केवल रोमन अथवा ग्रीक अक्षर ही प्रयुक्त करने चाहिए, जैसे साइन A, कॉस B आदि।

4. संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाले शब्दों का सामान्यतः अनुवाद किया जाना चाहिए।

5. हिंदी पर्यायों का चुनाव करते समय सरलता, अर्थ की परिशुद्धता और सुबोधता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। सुधार-विरोधी प्रवृत्तियों से बचना चाहिए।

6. सभी भारतीय भाषाओं के शब्दों में यथासंभव अधिकाधिक एकरूपता लाना ही इसका उद्देश्य होना चाहिए और इसके लिए ऐसे शब्द अपनाने चाहिए जो:-

   (क) अधिक से अधिक प्रादेशिक भाषाओं में प्रयुक्त होते हों, और

   (ख) संस्कृत धातुओं पर आधारित हों।

7. ऐसे देशी शब्द जो सामान्य प्रयोग के पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर हमारी भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे **telegraph/telegram** के लिए तार, **continent** के लिए महाद्वीप, **post** के लिए डाक आदि इसी रूप में व्यवहार में लाए जाने चाहिए।

8. अंग्रेजी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के ऐसे विदेशी शब्द जो भारतीय भाषाओं में प्रचलित हो गए हैं, जैसे टिकट, सिगनल, पेंशन, पुलिस, ब्यूरो, रेस्तरां, डीलक्स, आदि इसी रूप में अपनाए जाने चाहिए।

9. **अतर्राष्ट्रीय शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण :** अंग्रेजी शब्दों का लिप्यंतरण इतना जटिल नहीं होना चाहिए कि उसके कारण वर्तमान देवनागरी वर्णों में नए चिह्न व प्रतीक शामिल करने की आवश्यकता पड़े। शब्दों का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण अंग्रेजी उच्चारण के अधिकाधिक अनुरूप होना चाहिए और उनमें ऐसे परिवर्तन किए जाएं जो भारत के शिक्षित वर्ग में प्रचलित हों।

10. **लिंग** - हिंदी में अपनाए गए अंतर्राष्ट्रीय शब्दों को, अन्यथा कारण न होने पर, पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त करना चाहिए।

11. **संकर शब्द** : पारिभाषिक शब्दावली में संकर शब्द, जैसे **guaranteed** के लिए 'गारंटित', **classical** के लिए 'क्लासिकी', **codifier** के लिए 'कोडकार' आदि, के रूप सामान्य और प्राकृतिक भाषाशास्त्रीय प्रक्रिया के अनुसार बनाए गए हैं और ऐसे शब्दरूपों को पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकताओं, यथा

सुबोधता, उपयोगिता और संक्षिप्तता का ध्यान रखते हुए व्यवहार में लाना चाहिए।

12. **पारिभाषिक शब्दों में संधि और समास** : कठिन संधियों का यथासंभव कम से कम प्रयोग करना चाहिए और संयुक्त शब्दों के लिए दो शब्दों के बीच हाइफन लगा देना चाहिए। इससे नई शब्द-रचनाओं को सरलता और शीघ्रता से समझने में सहायता मिलेगी। जहाँ तक संस्कृत पर आधारित 'आदिवृद्धि' का संबंध है, 'व्यावहारिक', 'लाक्षणिक' आदि प्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों में आदिवृद्धि का प्रयोग ही अपेक्षित है। परंतु नवनिर्मित शब्दों में इससे बचा जा सकता है।

13. **हलंत** - नए अपनाए हुए शब्दों में आवश्यकतानुसार हलंत का प्रयोग करके उन्हें सही रूप में लिखना चाहिए।

14. **पंचम वर्ण का प्रयोग** : पंचम वर्ण के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करना चाहिए परंतु lens, patent आदि शब्दों का लिप्यंतरण लेंस, पेटेंट या पेटेण्ट न करके लेन्स, पेटेन्ट ही करना चाहिए।

आयोग के प्रकाशनों की सूचियाँ

1. शब्द-संग्रहों की सूची

क्र.सं.	शब्द-संग्रह	मूल्य
1.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान, खंड-1,2 (पृ. 2058)	174.00
2.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 819)	38.50
3.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान, खंड-1,2 (पृ. 1297)	292.00
4.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 700)	132.00
5.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : कृषि विज्ञान (पृ. 223)	278.00
6.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, भेषजविज्ञान, नृविज्ञान	239.40
7.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान, कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 240)	48.50
8.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : मुद्रण इंजीनियरी (पृ. 104)	48.00
9.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी (सिविल, विद्युत्, यांत्रिक) (पृ. 566)	57.00
10.	बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह : इंजीनियरी-2 (पृ. 186)	84.00
	विषयवार शब्दावलियाँ	
1.	मानविकी शब्दावली - (नृविज्ञान) (पृ. 179)	10.00
2.	कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली (पृ. 337)	87.00
3.	इस्पात एवं अलोह धातुकर्म शब्दावली (पृ. 378)	55.00

4.	वाणिज्य शब्दावली (पृ. 172)	259.00
5.	समेकित रक्षा शब्दावली	284.00
6.	अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली	30.00
7.	भाषाविज्ञान शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी) (पृ. 249)	113.00
8.	बृहत् प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	निःशुल्क
9.	बृहत् प्रशासन शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	निःशुल्क
10.	पशुचिकित्सा विज्ञान शब्दावली (पृ. 174)	82.00
11.	लोक-प्रशासन शब्दावली (पृ. 98)	52.00
12.	अर्थशास्त्र शब्दावली (मानविकी शब्दावली-9) (पृ. 96)	4.40
13.	नृविज्ञान शब्दावली (पृ. 198)	10.00
14.	वानिकी शब्दावली (पृ. 62)	8.50
15.	खेलकूद शब्दावली (पृ. 103)	10.25
16.	डाकतार शब्दावली (पृ. 126)	11.60
17.	रेलवे शब्दावली (पृ. 56)	2.00
18.	गुणता-नियंत्रण शब्दावली (पृ. 67)	38.00
19.	रेशम विज्ञान शब्दावली (पृ. 85)	50.00
20.	गणित की मूलभूत शब्दावली (पृ. 135)	निःशुल्क
21.	कंप्यूटर विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 115)	निःशुल्क
22.	भूगोल की मूलभूत शब्दावली (पृ. 156)	निःशुल्क
23.	भूविज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 141)	निःशुल्क
24.	वनस्पति विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 207)	निःशुल्क
25.	पशु चिकित्सा विज्ञान की मूलभूत शब्दावली (पृ. 179)	निःशुल्क

शब्द-संग्रह

1.	कोशिका-जैविकी शब्द-संग्रह (पृ. 197)	62.00
2.	गणित शब्द-संग्रह (पृ. 357)	143.00
3.	भौतिकी शब्द-संग्रह (पृ. 536)	119.00
4.	गृहविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ. 144)	60.00

5.	रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह (पृ. 167)	-
6.	भूगोल शब्द-संग्रह (पृ. 369)	200.00
7.	खनन एवं भूविज्ञान शब्द-संग्रह	-
8.	भूविज्ञान शब्द-संग्रह (पृ. 328)	88.00
9.	संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्द-संग्रह (पृ. 48)	15.00
10.	पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली (पृ. 184)	12.25

2. परिभाषा-कोशों की सूची

क्र.सं.	परिभाषा-कोश	मूल्य
1.	भूविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 284)	10.00
2.	भूविज्ञान परिभाषा-कोश-2 (सामान्य भूविज्ञान) (पृ. 196)	13.50
3.	शैलविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 195)	-
4.	प्रारंभिक पारिभाषिक रसायन कोश (पृ. 242)	3.25
5.	उच्चतर रसायन परिभाषा-कोश	17.00
6.	रसायन (कार्बनिक) परिभाषा-कोश-3 (पृ. 280)	25.00
7.	पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा-कोश (पृ. 188)	173.00
8.	प्रारंभिक पारिभाषिक कोश—गणित (पृ. 298)	18.75
9.	गणित परिभाषा-कोश (पृ. 253)	11.00
10.	आधुनिक बीजगणित परिभाषा-कोश (पृ. 159)	11.00
11.	सांख्यिकी परिभाषा-कोश (पृ. 432)	18.00
12.	भौतिकी परिभाषा-कोश (पृ. 212)	3.15
13.	आधुनिक भौतिकी परिभाषा-कोश (पृ. 290)	13.00
14.	प्राणिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 220)	10.00
15.	वनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश (1,2,3,4)	-
16.	वनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश-5 (आकारिकी तथा वर्गिकी)	-
17.	पुरावनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 161)	80.50
18.	भूगोल परिभाषा-कोश	10.00
19.	मानव-भूगोल परिभाषा-कोश (पृ. 228)	18.00
20.	मानचित्र-विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 361)	231.00
21.	गृहविज्ञान परिभाषा-कोश	-
22.	गृहविज्ञान परिभाषा-कोश-2 (पृ. 64)	9.00
23.	इलेक्ट्रॉनिकी परिभाषा-कोश (पृ. 215)	22.00
24.	तरल यांत्रिकी परिभाषा-कोश (पृ. 76)	10.00
25.	यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा-कोश (पृ. 135)	84.00
26.	सिविल इंजीनियरी परिभाषा-कोश (पृ. 112)	61.00

27.	आयुर्विज्ञान पारिभाषिक कोश (शल्यविज्ञान)	48.05
28.	इतिहास परिभाषा-कोश (पृ. 297)	20.50
29.	शिक्षा परिभाषा-कोश (पृ. 197)	13.50
30.	शिक्षा परिभाषा-कोश-2 (पृ. 205)	99.00
31.	मनोविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 142)	9.50
32.	दर्शन परिभाषा-कोश (पृ. 432)	9.75
33.	अर्थशास्त्र परिभाषा-कोश (पृ. 232)	117.00
34.	अर्थमिति परिभाषा-कोश (पृ. 245)	17.65
35.	वाणिज्य परिभाषा-कोश (पृ. 173)	24.70
36.	समाजकार्य परिभाषा-कोश (पृ. 183)	-
37.	समाजशास्त्र परिभाषा-कोश (पृ. 212)	71.40
38.	सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 287)	24.00
39.	पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 196)	49.00
40.	पत्रकारिता परिभाषा-कोश (पृ. 164)	87.50
41.	पुरातत्व परिभाषा-कोश (पृ. 391)	76.50
42.	पुरातत्व परिभाषा-कोश-2 (पृ. 453)	509.00
43.	पाश्चात्य संगीत परिभाषा-कोश (पृ. 104)	28.55
44.	भाषाविज्ञान परिभाषा-कोश खंड-1 (पृ. 212)	89.00
45.	कंप्यूटर-विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 144)	102.00
46.	राजनीतिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 356)	343.00
47.	प्रबंधविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 191)	170.00
48.	अंतर्राष्ट्रीय विधि परिभाषा-कोश (पृ. 293)	344.00
49.	कृषि-कीटविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 213)	75.00
50.	वनस्पतिविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 204)	75.00
51.	पादप आनुवंशिकी परिभाषा-कोश (पृ. 185)	75.00
52.	पादपरोगविज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 138)	75.00
53.	मृदा विज्ञान परिभाषा-कोश (पृ. 149)	77.00

54.	सूक्ष्मजैविकी परिभाषा-कोश (पृ. 193)	45.00
55.	भाषाविज्ञान परिभाषा-कोश खंड-2 (पृ. 259)	59.00
56.	धातुकर्म परिभाषा-कोश (पृ. 441)	278.00
57.	भारतीय दर्शन परिभाषा-कोश खंड-1 (पृ. 171)	151.00
58.	सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश (पृ. 263)	125.00
59.	विद्युत् इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00
60.	संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा-कोश	-

3. पाठमालाओं की सूची

क्र.सं.	पाठमाला	मूल्य
1.	ऐतिहासिक नगर	195.00
2.	प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	10[illegible].00
3.	समुद्री यात्राएँ	79.00
4.	विश्व दर्शन	53.00
5.	अपशिष्ट प्रबंधन	17.00
6.	कोयला : एक परिचय	294.00
7.	वाहित मल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
8.	पर्यावरणी प्रदूषण : नियंत्रण तथा प्रबंधन	23.50
9.	रत्न-विज्ञान – एक परिचय	115.00
10.	2-दूरीक एवं 2-मानकित समष्टियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
11.	पराज्यामितीय फलन	90.00
12.	ऊर्जा : संसाधन और संरक्षण	105.00
13.	स्वास्थ्य दीपिका	200.00
14.	समकालीन भारतीय दर्शन के कुछ मानवतावादी चिंतक : तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन	153.00
15.	स्वतंत्रता पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन	153.00
16.	भारतीय कृषि का विकास	155.00
17.	इस्पात परिचय	146.00
18.	जैव प्रौद्योगिकी (अनुसंधान एवं विकास)	134.00
19.	भविष्य की आशा : हिंद महासागर	154.00

GMGIPN—10 M of HRD/ND/04—600 Bks.

©

पी. ई. डी.—870
600-2004 (DSK-II)

लेखक परिचय

लेखक — राधाकांत भारती

राष्ट्रीय स्तर के लेखक और पत्रकार। करीब 25 वर्षों तक भारत सरकार की पत्रिका 'भगीरथ' का संपादन कार्य। भूगोल, भू विज्ञान तथा जलवायु से संबंधित अनेक लेखों तथा कार्यक्रमों में सहभागिता। आकाशवाणी तथा दूरदर्शन से विज्ञान विषयों पर अनेक कार्यक्रम प्रसारित हुए।

पूरे भारत तथा ब्रिटेन सहित कई यूरोपीय देशों की यात्रा तथा लेखन कार्य। रायल सोसाइटी, लंदन से भूगोल में फेलोशिप प्राप्त। संप्रति राजधानी नई दिल्ली में रहकर लेखन तथा संपादन-कार्य।

संपर्क सूत्र- 56,नगिन लेक अपार्टमेन्ट,पीरागढी,नई दिल्ली ।

Price : (Inland) : Rs. 112.36; (Foreign) : £ 4.14, $ 5.97

PRINTED BY THE GENERAL MANAGER, GOVT. OF INDIA PRESS, NASHIK-422 006
AND PUBLISHED BY THE CONTROLLER OF PUBLICATIONS, DELHI-110-054